पुस्तकालय
संस्करण

कला और आँसू

योगराज थानी

योगराज थानी

योगराज थानी एक तरुण साहित्यकार हैं। इनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हो अब पूर्ण रूप से प्रकाश में आ रही है। साहित्य-सृजन के प्रति जो सच्ची निष्ठा और लगन अपेक्षित है, वह प्रभूत मात्रा में इन साहित्यकार में है। यही कारण है कि अपनी रचनाओं में ये पर्याप्त सफल हो रहे हैं। बाल-साहित्य-सृजन में आपकी विशेष रुचि है। 'रवि और देव' नामक आपके किशोर-उपन्यास से आपको विशेष ख्याति मिली है।

अर्चना
अभिनव
पुस्तक

वितरक

वर्मा ब्रदर्ज़, २१ सैंट्रल मार्केट, पो. बा. ५३१, नई दिल्ली

शोभराज थानी

कला और आँसू

अर्चना प्रकाशन, नई दिल्ली

अपना प्रकाशन

पटेल नगर, नई दिल्ली
प्रकाशक

मूल्य :

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वींस रोड, दिल्ली
मुद्रक

KALA AUR ANSOO YOGRAJ THANI NOVEL

उन महिलाओं को समर्पित
जो इस उपन्यास की नायिका
'कला' की भाँति
समाज के अत्याचार का
शिकार होकर
तिल-तिल जल-जल कर
अपनी ज़िन्दगी के दिन
काट रही हैं।

कला
और
आँसू

एक

मैं एक ज़िन्दा लाश हूँ, जो चल लेती हूँ, फिर लेती हूँ, खा लेती हूँ, पी लेती हूँ, वे सब काम कर लेती हूँ जो जीवित प्राणी करते हैं, पर इस पर भी मैं जीवित नहीं हूँ। एक ऐसा मुर्दा हूँ जिसे ज़िन्दा रहने को विवश किया जा रहा है। मैं चाहती हूँ कि किसी एक ओर लग जाऊँ, मर जाऊँ या जी पाऊँ, पर लोग मुझे ऐसा नहीं करने देते। समाज मुझे ऐसा नहीं करने देता, मेरे भाई मुझे ऐसा नहीं करने देते।

मैं बीच मँझधार में रहना पसन्द नहीं करती, इस पार या उस पार कहीं एक ठिकाने लग जाना चाहती हूँ, पर ऐसा भी नहीं कर सकती।

जो आदमी मरना चाहे और लोग उसे मरने न दें, अगर वह जीना चाहे तो लोग उसे जीने न दें, कैसी है यह विडम्बना !

मरना कितने प्रकार का होता है यह तो मुझे अच्छी तरह पता नहीं, पर इतना तो जानती ही हूँ कि दो प्रकार का तो होता ही है, क्योंकि मैंने दोनों प्रकार का मरना देखा है। एक मरना तो स्वयं भोग भी रही हूँ।

एक मरना तो वह होता है जिसे दुनियाँ जानती है। वही मरना— जब आदमी इस दुःखी संसार से छुटकारा पा लेता है। फिर कहाँ चला जाता है, यह तो मुझे आज तक किसी ने ठीक तरह से नहीं बताया। हाँ, नरक और स्वर्ग दो लोक तो मैंने भी सुन रखे हैं और यह भी सुन रखा है कि व्यक्ति इन दोनों लोकों में से किसी एक लोक में ज़रूर पहुँच

जाता है—नरक या स्वर्ग में। बीच में कोई नहीं रहता, यदि रहता है तो भूत-प्रेत का रूप धारण कर लेता है। कितना बुरा होता है बीच में ही रहना। आदमी नरक में पहुँच जाये भले स्वर्ग में, पर कहीं पहुँचे तो सही। मेरी तरह बीच में तो न लटकता रहे। मैं तो नरक में भी जाने को तैयार हूँ। हाँ, नरक में भी जाने को तैयार हूँ, पर नरक में भी तो तभी पहुंच पाऊँगी जब मर सकूंगी और सचमुच को मर सकूंगी। कोई मुझे सात मन के लकड़ियों के ढेर पर रखकर आग लगाएगा। और तब तक घर नहीं लौटेगा जब तक यह ढेर, ढेर नहीं हो जायेगा, यानि लकड़ियों के साथ-साथ मैं भी राख नहीं हो जाऊँगी।

फिर भले मैं नरक में जाऊँ या स्वर्ग में, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं। हाँ, इतना तो भगवान् मेरे पर कृपा कर ही देगा कि मैं बीच में न रह पाऊँ यानि भूत-प्रेत न बन जाऊँ। और मुझे इस बात का विश्वास भी है कि भगवान् मेरी यह प्रार्थना अवश्य मान लेगा। वह भगवान्, जिसने आज तक मेरी एक भी प्रार्थना नहीं मानी, एक भी याचना नहीं सुनी और लाखों बूंद आँसू गिराकर भी मैं उसका ध्यान नहीं हटा सकी। मेरी यह प्रार्थना तो मान ही लेगा कि मुझे बीच में नहीं रहने देगा और और नरक में डाल देगा। हाँ, नरक में, मुझे स्वर्ग की चाह नहीं है।

वैसे भगवान् बड़ा न्यायकारी है। मैं यही आज तक सुनती रही हूँ और विश्वास करती रही हूँ कि दुःखी हृदय की आवाज़ वह जल्दी सुन लेता है और मन्दिरों के ज़ोर-ज़ोर से ध्वनि करने वाले घड़ियाल वह देर से सुनता है, पर मैंने तो दोनों काम किये हैं। और कोई तो एक-आध दिन यह काम करता होगा, कोई साल दो साल, पर मैं तो पन्द्रह वर्षों से ही निरन्तर यही काम करती आ रही हूँ। और कुछ करने को

मेरे पास है ही क्या ? कोई कहना चाहे तो कह भी सकता है कि जब मुझे कुछ और करने को नहीं है तो क्या बुरा है खाली और बेकार समय में भगवान् को याद कर लेना और मन्दिर में जाकर कीर्तन सुन लेना।

इसमें कोई लाभ नहीं होगा तो हानि भी क्या हो सकती है ? कोई किसी उद्देश्य के लिए भक्ति करता है, तो कोई भगवान् से प्रार्थना करता है कि उसका अमुक काम पूरा हो जाय, पर मेरा भक्ति करने में कोई उद्देश्य नहीं है, कोई स्वार्थ नहीं है, और है भी तो केवल इतना कि मेरा समय ऐसे कामों में अच्छा बीत जाता है और यह अपने आपमें बहुत बड़ा स्वार्थ है।

मैंने अपने जीवन में और कोई काम नहीं किया। भक्ति की है या आँसू बहाये हैं। आँसू बहाये हैं तो इतने कि उनका हिसाब नहीं लगा सकती। जिन्होंने जीवन में दो-चार आँसू बहाये होते हैं वे आँसुओं का हिसाब रख सकते हैं। पर मैं आँसुओं का क्या हिसाब रखूं ! इतने से अनुमान लगा लेती हूँ कि जितने आँसू भगवान् किसी पुरुष या नारी को देता है, उसकी किस्मत लिखते समय या भाग्य-रेखा बनाते समय···, भगवान् ने वे आँसू मुझे भी दिये हैं; इतने दिये हैं कि और माँगने की इच्छा नहीं है, और इच्छा हो भी तो अब भगवान् पर इतनी आस नहीं रह गई है कि वह मुझे और आँसू दे देगा। मेरे पास जितने आँसू थे, मैंने समाप्त कर दिये और अब और कोई आँसू नहीं बचा खर्च करने को, और आँसू कोई उधार भी तो नहीं देता।

मैं अपने आँसुओं को समय से पहले खर्च कर चुकी हूँ, इसलिए और आँसू चाहिएँ जीवन काटने को। जो लोग अपने जीवन में अनियमित

रूप से चलते हैं, वे बाद में पछताते हैं। मैंने अपनी पूंजी समय से पहले समाप्त कर दी है और अब मुझे पूंजी चाहिए, आँसुओं की पूंजी।

मुझे तो आँसू चाहिएँ, और आँसू चाहिएँ। मुझे आँसू देने वाला कोई मिले तो सही। मैं उसे भगवान् मान लूंगी। उस भगवान् से भी बड़ा भगवान्, जो किस्मत बनाता है, या किसी को मार देता है, या जीवन दे देता है। पर मुझे आँसू कौन देगा! कोई नहीं देगा, सूद पर भी नहीं देगा...

भगवान् भी आँसू नहीं देगा यह मानती हूँ पर यह भी मानती हूँ कि भगवान् मेरी आँसुओं की चाह तो समाप्त कर सकता है। हाँ, वह मुझे मार तो सकता है। यही एक तरीका है मुझे शान्त करने का कि वह मुझे मार दे और कोई मुझे सात मन की लकड़ियों के ढेर पर रखकर आग लगा दे। तब मैं राख हो जाऊँ यानि सचमुच की मर जाऊँ।

सचमुच का मरना ही एक मरना है, जो अच्छा है, और जो झूठ-मूठ का जीना है, वही बुरा है। मैं झूठ-मूठ का जी रही हूँ, न चाहते हुए भी जी रही हूँ। इसीलिए कहती हूँ कि मैं एक ज़िन्दा मुर्दा हूँ जो चलता है, फिरता है, खाता है, पीता है और फिर सो जाता है, रोना चाहता है पर आँसुओं का स्टॉक खाली देखकर फिर चुप हो जाता है, और झूठ-मूठ का सो जाता है।

हाँ, तो मैं कहना चाहती हूँ कि एक दूसरा मरना भी होता है जिसमें आग नहीं लगाई जाती, केवल जलाया जाता है और ढेर नहीं किया जाता। किसी चेतनाहीन प्राणी को आग लगा देना, बर्फ में फेंक देना, चीलों और कुत्तों को खिला देना या सड़ते ही रहने देना एक-सा ही हो सकता है। पीड़ा या दुःख तो उसे होता है जिसमें चेतना होती है, आत्मा

होती भी है और नहीं भी होती। होती इसलिए है कि वह चलता-फिरता है और नहीं इसलिए कि उसे जीवनभर जलना होता है। पहले मरने में आदमी थोड़ी देर के लिए जलता है और सदा के लिए शान्त हो जाता है। दूसरे मरने में व्यक्ति रोज़ जलता है, महीनों जलता है, वर्षों जलता है और शान्त कभी नहीं होता। इसलिए पहले वाला मरना अधिक अच्छा और दूसरे वाला मरना बुरा है। और भगवान् किसी दुश्मन को भी इस मरने में न डाले। मैं इस दूसरे मरने का इतना अनुभव कर चुकी हूँ कि अब वह ही मेरा अभ्यास बन गया है और वह अभ्यास ही अब मेरी आदत हो गई है। आदत, रोज़ जलने की आदत, पर इस आदत में भी कभी-कभी इतना याद कर लेती हूँ कि कभी तो वह घड़ी आयेगी जब मुझे थोड़ी देर के लिए जला दिया जायेगा और मैं सदा के लिए शान्त हो जाऊँगी।

वह समय आयेगा, ज़रूर आयेगा, इतना तो पता है, क्योंकि भगवान् ने मुझे आँसू ही दिये थे, कोई अमृत बूटी नहीं पिलाई थी। जब उसने अमृत बूटी नहीं पिलाई तो फिर एक न एक दिन शान्त तो होना ही होगा; आज नहीं कल, कल नहीं, परसों।

पर मेरे पास आँसूओं के अतिरिक्त कुछ और भी है, और वह है मेरी कहानी जो मैं मरने से पहले सुना देना चाहती हूँ।

× × × ×

मैं कला हूँ। कला, कितना सुन्दर शब्द है! 'कला' हाँ, शब्द सुन्दर है। जिस चीज़ के साथ लग जाता है, वही सुन्दर बन जाती है। तो यह शब्द मेरे साथ भी लग गया और मैं भी सुन्दर बन गयी। यह शब्द मेरे साथ नाम के रूप में लगा। नाम के रूप में, और मेरा नाम कला है।

सब परिचितों के लिए कला, माँ-बाप के लिए कला, और पूरा नाम कलावती।

पर अब तो यह स्थिति आ गई है कि मैं अपना नाम भी भूलती जा रही हूँ। सब तू—तू करके बुलाते हैं, कला कहकर कोई नहीं पुकारता।

आप लोग यह भी कह सकते हैं कि मैं आत्म-प्रचार कर रही हूँ। अपनी कहानी सुनाने का ढोंग रच रही हूँ। और यदि दुःखी हूँ भी तो इस सँसार में दुःखी कौन नहीं होता। क्या सभी दुःखी अपने आपको ज़िन्दा लाश कहने लग जायें! यदि मुझे जीवन में कोई ठोकर लगी भी है तो क्या हुआ। क्या ठोकर किसी को नहीं लगती? हिम्मत करो, हिम्मत से क्या कुछ नहीं होता। पर नहीं, मैं न तो आत्म-प्रचार ही कर रही हूँ और न अपना दुखड़ा प्रकट कर रही हूँ। यह तो एक कला की कहानी है जो दुखड़ा नहीं बताना चाहती, केवल यही बताना चाहती है कि उसने हिम्मत भी की है और लोग उसे हिम्मत करने नहीं देते। वह अपने दुःख को हल्का कर लेने का ढंग भी जानती है, पर समाज उसे आगे नहीं बढ़ने देता। तो फिर क्या आपत्ति है आपको बता देने में कि मैं एक ऐसी महिला हूँ, जिसका पति है और पति नहीं भी है, यानि वह ज़िन्दा है और मैं ज़िन्दा हूँ, पर कोई ज़िन्दा नहीं है। मैं सधवा हूँ और सधवा नहीं भी हूँ, पर मैं विधवा तो बिल्कुल नहीं हूँ और न ही मैं यह शब्द किसी से सुनने को तैयार हूँ। तैयार तो इसलिए भी नहीं हूँ कि कोई आकर मेरे सामने मेरे पति की बुराई कर जाये।

दो

हाँ, तो मैं कला हूँ, नाम की कला। आप मुझे कला के नाम से याद रखिए। हो सकता है, मैं कहानी कहते-कहते अपना नाम ही भूल जाऊँ। आज मैं ३५ वर्ष की कला हूँ। आज न सही, अपने समय की खूबसूरत कला।

बहुत खूबसूरत नहीं, पर मुझे सुन्दर तो सभी कहते थे।

मैं इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स कॉलेज की छात्रा थी। योग्यता बी० ए० तक थी, पूरी बी० ए० पास नहीं थी। माँ-बाप ने बी० ए० से निकाल लिया था। कहते थे 'लड़कियों को अधिक नहीं पढ़ाना चाहिए, और हमने अपनी लड़की से कोई नौकरी थोड़े ही करवानी है! दो भाइयों की बहिन, माँ-बाप की इकलौती बेटी, कोई नौकरी थोड़े ही करेगी!'

और फिर घर में कमी ही क्या थी। पिता जी के पास एक मकान था, काफी बड़ा मकान। कितने ही किरायेदार उस मकान में आते और चले जाते। कोई भी किरायेदार छः महीने या वर्षभर से अधिक नहीं रहता। और उसका कारण होता मेरे पिता जी का किरायेदारों के प्रति कटु व्यवहार।

राधेश्याम सारी बस्ती में अपने अनोखेपन के लिए प्रसिद्ध थे। यानि पैसे से मेरे पिता को—मेरे पिता जी का ही नाम राधेश्याम था—बहुत प्रेम था और इसका कारण यह भी हो सकता था कि हम लोग गुप्ता कहलाते थे। गुप्ता कैसे होते हैं, यह काफी लोग जानते हैं। बहुत लोगों

ने कुछ नियम भी बना रखे हैं। जैसे इस भारत में गुप्ता, जैन, अग्रवाल, सक्सेना, गोयल कोई गरीब नहीं है, अगर है भी तो केवल दिखावे के हैं या बनावटी हैं। एक सचमुच के गरीब होते हैं, और एक बनावटी होते हैं, और हमारा देश बनावटी गरीबों से भरा हुआ है। लोगों के पास सब कुछ होता है फिर भी अपने आपको गरीब कहते हैं।

मेरे पिता जी भी बनावटी गरीब थे। हर समय कहते थे 'गरीब आदमा हूँ।'

और एक दिन मेरे पिता जी बीमार भी हुए। काफी बीमार। १०४ बुखार था। पहले तो हमी लोगों ने अन्दाज़ लगा लिया कि बुखार काफी ज़्यादा है। थरमामीटर घर में नहीं था, बाज़ार से खरीदने की मनाही थी। पास-पड़ोस कहीं से माँगकर लाया गया। देखा, पिता जी को ठीक १०४ बुखार है।

बड़े भाई ने पिता जी से कहा—'पिता जी, डॉक्टर बुला लाऊँ?'

'नहीं, कोई जरूरत नहीं। तुम अपना काम करो और कॉलेज जाने की तैयार करो। मैं अपने आप डॉक्टर के पास चला जाऊँगा।'

'नहीं पिता जी, खुद चलकर डॉक्टर के पास जाना ठीक नहीं है।'

'क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है, यह तुम मुझे समझाने आये हो? मुझे पता है, तुम लोग मिलकर मेरा घर लुटा देना चाहते हो। अभी डॉक्टर आयेगा, एक मिनट खड़ा होगा और १० रुपये लेकर चला जाएगा। दवाई के पैसे अलग देने होंगे।'

'पिता जी, आप कैसी बातें कर रहे हैं!' राजेश ने हाथ झटकाते हुए कहा।

राजेश मेरे बड़े भाई का नाम है, बी० ए० में पढ़ता है।

मैं बीच में ही बोल उठी—'राजेश भैया, तुम तो हर समय पिता जी से झगड़ते ही रहते हो !'

'इसमें झगड़ने की क्या बात है कला ! देखो, १०४ बुखार है। मैं कहता हूँ डाक्टर बुला लाऊँ तो पिता जी कहते हैं, 'नहीं' कहते हैं कि १० रुपये फालतू लग जाएँगे। आखिर पैसा होता किस लिए है।'

मेरे पिता जी बीमारी पर भी पैसा नहीं खर्च करते। अपनी बीमारी पर तो बिलकुल ही नहीं। उस दिन भी भाई जब कॉलेज चला गया तो पिता जी खुद डॉक्टर के पास गये। मैं भी उनके साथ हो ली।

नीचे डॉक्टर शारदाप्रसादकी दुकान पर पहुँचकर पिता जी डॉक्टर साहब से कहने लगे—'डाक्टर साहब, मुझे रात थोड़ा बुखार हो गया था।'

'क्या हुआ, आखिर शरीर ही तो है न !'

'नहीं नहीं, वैसे मैं कभी बीमार नहीं होता।'

'अच्छा ही है' इतने में डॉक्टर साहबने थरमामीटर पिता जी के मुँह में लगा दिया और हाथ की नाड़ी देखने लग गये।

थरमामीटर मुँह से निकालकर डॉक्टर ने कहा—'आपको तो १०३ बुखार है।'

पिता जी ने कहा—'इसमें हैरान होने की क्या बात है ! रात तो मुझे १०४ था। लगता है उतर जाएगा। अपने आप उतर जायेगा। बिना दवाई के उतर जायेगा।'

मैंने कहा—'पिता जी, आप दवाई नहीं लीजिएगा ?'

'नहीं बेटी, वैसे ही ठीक हो जाऊँगा।' और पिता जी डॉक्टर की दूकान से उठने लगे और कहने लगे—'बेटा, फिर यह डॉक्टर साहब एक

दिन की दवाई का सवा रुपया लेते हैं। सदर बाज़ार से एक दिन की दवाई छः आने में मिल जाती है। मैं जाकर सदर बाज़ार से ही ले आऊँगा।'

यह वार्तालाप सुनकर डॉक्टर चुप नहीं रह सका। क्रोध तो उसे नहीं आया पर व्यंग्य के भाव से उसने पूछा—'लाला जी, तो आप सब्ज़ी मंडी से सदर बाज़ार दवाई लेने जाएँगे ?'

मेरे पिता जी को आस-पड़ोसमें सब लोग लाला जी ही कहते थे।

'हाँ, जाऊँगा।'

'फिर बस या स्कूटर में कितने पैसे लग जाएँगे ?'

और पिता जी ने कहा—'रहने दो डॉक्टर, मैं इतना मूर्ख न होंहूँ। मुझे सारा दिन काम ही क्या करना होता है ! सुबह चला जाऊँगा और शाम तक लौट आऊँगा।'

'पैदल !' डाक्टर ने हैरानी से कहा।

'हाँ, तो इसमें आँखें फाड़ने की क्या ज़रूरत है ! तुम तो यही चाहोगे न कि मैं तुमसे ही दवाई लूं। तुम आज भी दवा दोगे, कल भी दोगे और फिर परसों भी दोगे। फिर एक दिन कहोगे 'टीका लगवा लीजिए, आप जल्दी ठीक हो जाएँगे।' हाँ मैं सब हथकण्डे जानता हूँ डाक्टर ! तुम मुझे शिक्षा नहीं दे सकते। मैंने धूप में बैठकर बाल सफेद नहीं किये।'

'अच्छा लाला जी, मुझे माफ करिए।' डॉक्टर ने अपनी जान छुड़ाने के-से भाव से कहा।

पर पिता जी अभी उसे छोड़ने वाले नहीं थे। इतने में कई और रोगी भी डॉक्टर की दूकान पर आ गये थे। डॉक्टर चाहता था कि

किसी तरह मेरे पिता जी वहाँ से जल्दी चले जाएँ, पर पिता जी चाहते थे कि जो कुछ उन्होंने अंग्रेज़ी इलाज के बारे में सुन रखा है, सारा वहीं कह दें।

और उन्होंने कहा—'डॉक्टर, तुम बताओ, कोई अंग्रेज़ी दवाई ऐसी है भी जो हानि न करती हो ? एक फायदा करती है तो दस प्रकार के नये रोग लगा देती है।'

डॉक्टर बिलकुल चुप हो गया था। मैं मन ही मन बहुत शर्मिन्दा हो रही थी, पर अपने पिता जी से तो कुछ नहीं कह सकती थी।

मैंने किसी तरह पिता जी को कह-कहकर और बाँह खींच-खींचकर डॉक्टर की दूकान से बाहर निकाला।

पिता जी गुस्से में आ गये थे। वैसे ही गुस्से में आ गये थे, हालाँकि कोई बात नहीं थी। पिता जी मुझे घर छोड़कर गुस्से-गुस्से में छड़ी लेकर चल दिये।

मैंने पूछा भी 'पिता जी कहाँ जा रहे हैं ?'

'अभी आ रहा हूँ।' कहकर वह घर से निकल गये।

मैंने अनुमान लगा लिया था कि पिता जी सदर बाज़ार ही गये हैं, छः आने की दवाई लेने। देसी दवाई लेने, जो सस्ती भी होती है और अच्छी भी होती है। यानि जो फायदा नहीं करती तो नुकसान भी नहीं करती। और अंग्रेज़ी दवाई एक फायदा करती है तो दस नुकसान करती है, और यदि फायदा नहीं करती तो नुकसान तो ज़रूर करती है।

मैं भागती हुई माँ के पास गई। मैंने माँ से कहा—'माँ, तुम पिता जी को क्यों नहीं रोकती ?'

माँ ने कहा—'बेटी, वह रुकने वाले नहीं हैं। अपनी मर्ज़ी के मालिक

हैं। जो चाहते हैं वही करते हैं, और जो सोचते हैं वही चाहते हैं।'

मैंने माँ से फिर पूछा—'माँ, पिता जी को पैसे से इतना प्रेम क्यों है?'

'प्रेम, प्रेम किसे नहीं होता बेटी? कौन है जो पैसे को वैसे ही फेंक देता है? कोई नहीं फेंकता, कला! पैसा चीज़ ही ऐसी है। और जो कहता है कि उसका पैसे से प्रेम नहीं है, वह झूठ बोलता है, यानि वह बनता है। वह योगी, संन्यासी या महापुरुष बनने का ढोंग करता है। फिर तुम्हारे पिता में यही तो बुराई है कि वह पैसा कम खर्च करना चाहते हैं या कि नहीं करना चाहते। और तो कोई बुराई नहीं है। बेटी, दुनियाँ में कई लोग ऐसे भी हैं जो पैसे के लिए देश से द्रोह कर जाते हैं, पैसे के लिए आदमी को जान से मार डालते हैं या फिर एक स्त्री के गले से हार उतारने के लिए उसका गला अलग कर देते हैं। यह सब किस लिए? पैसे के लिए ही न! और अपनी बेटी का विवाह किसी बूढ़े से, या कि किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसकी तीन पत्नियाँ पहले ही मर चुकी होती हैं और उसकी सन्तानें भी होती हैं, कर देते हैं। किस लिए? पैसे के लिए ही न! कि उन्हें दहेज में कुछ नहीं देना पड़ेगा या कि उनके पास देने के लिए होता ही कुछ नहीं।'

और मैं एकाएक माँ के समीप हो गई। माँ ने मुझे गले से लगाया और फिर कहने लगी—'बेटी, तुम क्यों उदास हो गई हो! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी शादी तो इतनी धूम-धाम से होगी कि तुम याद रखोगी और लड़का भी तुम्हारे पिता ने हीरे जैसा खोज निकाला है। सचमुच हीरे जैसा। जीवनभर सुख भोगोगी। पर हमें न भूल जाना बेटी!'

मैंने माथा सिकोड़ते हुए कहा—'चुप करो माँ, मुझे शादी नहीं करनी है।'

और मैं वहाँ से उठने ही लगी थी कि माँ ने मेरी कमीज़ पकड़ ली और कहने लगी—'बेटी, आज तो तुम मुझसे इतना प्रेम जता रही हो न, फिर तुम्हें माँ से मिलने की फ़ुरसत भी नहीं होगी। अपने पति के घर में जाकर इतना खो जाओगी कि तुम्हें याद भी नहीं रहेगा कि तुम्हारी माँ है, तुम्हारे भाई हैं, राजेश है, केवल है। राजेश तुम्हें लेने आयेगा तो तुम मन ही मन कहोगी 'तो ओह, यह भाई मुझे अपने घर ले जाने आया है', और तुम बेमन भाव से कहोगी—'राजेश भैया, मैं कल आ जाऊँगी, खुद ही आ जाऊँगी। आज मैं उनसे पूछ भी लूँगी।'

और राजेश निराश होकर लौट आयेगा और फिर मुझसे आकर पूछेगा—'माँ, क्या बहिनें पति के घर जाकर भाई को भूल जाती हैं या कि उनका प्रेम भाइयों से कम हो जाता है और पति से बढ़ जाता है।'

फिर राजेश मुझसे कहेगा—'माँ, कला अब मुझसे उतना प्यार नहीं करती है जितना पहले करती थी।'

मैं माँ से अपनी कमीज़ छुड़वाकर भाग जाना चाहती थी पर माँ कहती गई—'क्यों कला, माँ से शरमाती हो ?'

मैंने बात बदलने के-से ढंग से कहा—'माँ, पिता जी कब तक लौट आयेंगे ?'

माँ बोली—'बेटी, अभी आ जाएँगे। तुम पिता जी से नाराज़ हो बेटी ?'

'नहीं माँ !'

'हाँ बेटी, पिता जी से नाराज़ होना अच्छा नहीं है। वे यह सब कुछ

तुम्हारे ही लिए कर रहे हैं। आखिर बेटी की शादी भी तो करनी है न, पैसा तो जमा करना ही होगा।'

'माँ, तो क्या मैं पिता जी के लिए भार हूँ जो वे इतना कष्ट सह रहे हैं मेरे लिए?'

'नहीं बेटी, भार कहाँ हो! हम तो तुम्हें राजेश और केवल से भी ज़्यादा प्यार करते हैं।'

'तो फिर माँ?'

'नहीं बेटी, भार नहीं हो, तुम्हारे पिता जी का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही है कि वह किसी की नहीं सुनते। मेरी भी नहीं सुनते। और सच बात तो यह है......'

और माँ कहते-कहते चुप हो गई।

'माँ, क्या बात है?'

'कुछ नहीं बेटी!'

'माँ, कुछ तो बताओ।'

और माँ बोली—'बेटी कला, पिता जी तुम्हारी सगाई की बात-चीत कर रहे हैं।'

'चुप रहो माँ, मुझे कुछ नहीं सुनना है।'

'कला, बड़ा अच्छा लड़का है। कपड़े की दुकान है। जालन्धर में रहता है। खूबसूरत इतना है कि जब उसे देखोगी तो देखती ही रह जाओगी।'

'बस करो माँ!'

'बेटी, शायद शंकर है उसका नाम। हाँ, शंकर भी माँ-बाप का इकलौता बेटा है। इकलौता। और तुम भी तो हमारी इकलौती बेटी

हो। और फिर हमारी बेटी भी तो किसी से कम सुन्दर नहीं है!'

माँ इसके बाद भी कुछ न कुछ कहती रही होगी पर मुझे इसका कुछ पता नहीं। मैं तो उसी समय भागकर मोहिनी के पास चली गई थी।

तीन

मोहिनी मेरी सहेली थी, बहुत गहरी और पक्का सहेली। हम दो-दो घण्टे इकट्ठी बैठतीं, इकट्ठी खातीं और कई बार तो इकट्ठी एक ही ठप्पे की कमीज़ पहनकर कॉलेज भी जातीं।

मोहिनी हमारे ही मकान के ऊपर वाले पोर्शन में रहती है। और पाँच वर्षों से वहीं रह रही है अपने माता-पिता के साथ। उसका भाई नहीं, वह है और उसके माता-पिता हैं।

वह पाँच साल से हमारे मकान में रहती है। पाँच साल से। इस मकान में तो कोई छः महीने रहता या ज़्यादा से ज़्यादा एक साल। पर मोहिनी तो इस मकान में पाँच वर्षों से रह रही है। सेठ अमीरचन्द मोहिनी के पिता हैं। और सेठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। सेठ जी जब भी सुबह दूकान जाते या वापिस घर लौटते तो उन्हें बाज़ार वाले कई बार पूछ लेते—'सेठ जी, आप लाला के मकान में इतने वर्षों से टिके हुए हैं, क्या लाला से खूब पट रही है?'

सारे बाज़ार वाले लाला राधेश्याम को अच्छी तरह से जानते थे कि यदि किसी किरायेदार की बत्ती खराब हो गई है या कि फ्यूज़ उड़ गया है तो लाला जी कभी ठीक करवाकर नहीं देंगे। खुद किरायेदार ही उसे ठीक करवाये या न करवाये। नल का पाइप यदि खराब हो गया है और पानी बन्द करने पर भी नहीं रुकता तो इसमें मकान-मालिक कुछ नहीं करेगा। हाँ, किरायेदार को डाँटेगा तो सही कि नल बन्द

करो, पर नई नलकी नहीं लाकर देगा और किरायेदार को कहेगा कि खुद बाज़ार से जाकर नलकी लाकर लगाओ। और किसी किरायेदार की यह हिम्मत नहीं होती कि वह मकान-मालिक से यह कह सके—'फिर हम नलकी के पैसे किराये में से काट लेंगे।'

ऐसे जबरदस्त आदमी थे मेरे पिता जी। पर मेरे पिता जी को मोहिनी के पिता से कोई शिकायत नहीं थी।

सेठ जी आये महीने मेरे पिता के हाथ पर साठ रुपये रख देते। असल में उनके मकान का किराया पचास रुपये था। बिजली-पानी डालकर पचपन के लगभग हो जाता था, पर सेठ जी सदा साठ रुपया ही लाल जी को देते और कहते—'हिसाब कर लीजिएगा, जो बचे वह ऊपर मोहिनी को भिजवा दीजिए।'

और लाला जी खुश हो जाते। उन्हें तो ऐसा ही आदमी पसन्द भी था जो पैसे दे दे और यह न पूछे—'इस बार बिजली के कितने रुपये काटे हैं या मीटर के हिसाब से तो इतने नहीं बनते।'

मोहिनी इन सब चीज़ों से परे थी। मोहिनी का मुझसे प्रेम था। उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उसकी कोई बहिन नहीं थी। बहिन तो मेरी भी नहीं थी पर मैं अपने भाइयों से तो मन लगा सकती थी पर मोहिनी को तो कोई चाहिए ही था न, और उसने फिर मुझे ही अपना साथी चुन लिया था।

हम दोनों एक ही कॉलेज में पढ़ती थीं। एक ही जमात में थीं। एक-सी ही हमारी उम्र थी और एक-सा ही हम दोनों का कद-बुत था।

रहा सुन्दरता का प्रश्न, हम दोनों ही सुन्दर थीं। यदि उन्नीस-बीस का भी अन्तर निकालना हो तो कहा जा सकता है कि कला बीस

है और मोहिनी उन्नीस।

हम दोनों एक दूसरे को अपनी बहिनें समझतीं। पर मोहिनी मुझे कई बार कह देती—'बहिन से सखी बनना ज़्यादा अच्छा है।'

और उसका यह कहना ठीक भी था कि बहिन से बहिन उतनी स्पष्ट बात नहीं कर सकती जितनी कि एक सखी से दूसरी सखी कर सकती है। और मुझे यह बात किसी सीमा तक ठीक भी लगती।

हम दोनों इकट्ठी रहतीं। इकट्ठी कॉलेज जातीं, इकट्ठी सिनेमा देखतीं, इकट्ठी खाती-पीतीं और कई बार इकट्ठी सो जातीं।

हम दोनों सखियाँ हैं, बहुत गहरी और पक्की सखियाँ, जिनमें आपस में बहुत प्रेम है। जो हर समय एक दूसरे की सलाह लेतीं और फिर करतीं अपनी मर्ज़ी। हाँ, करतीं अपनी मर्ज़ी ही। हम दोनों ऊपर से एक होते हुए भी भीतर से दो हैं, बिल्कुल अलग-अलग दो। हमारे विचार भिन्न हैं, हमारे दृष्टिकोण अलग-अलग हैं। मोहिनी बिल्कुल आजकल की लड़की है, आजकल की विचारधारा में पली हुई, जो कई बार तो यह भी कह जाती है कि जब विदेश की नारी डेढ़ गज़ में पूरा तन ढाँप लेती है तो फिर हमें क्यों १० गज़ कपड़ा ओढ़ने को कहा जाता है।

विदेश की नारी पूरे १॥ गज़ में ही तन ढाँप लेती है और भारतीय नारी को कम से कम १० गज़ कपड़ा ओढ़ना पड़ता है। यानि अगर वह पंजाबी लड़की है और सलवार-कमीज़ पहनती है तो भी १० गज़। चार गज़ सलवार, तीन गज कमीज़, और फिर तीन गज का डुपट्टा और अगर वह सलवार-कमीज़ पसन्द नहीं करती और साढ़ी पहनना चाहती है तो भी १० गज़ से अधिक ही कपड़ा लगता है। मोहिनी तो कई बार कहती यदि भारतीय नारी भी डेढ़ गज़ कपड़े में तन ढाँपने

का प्रबन्ध कर ले, या समाज उसे ऐसा करने की अनुमति दे दे तो क्या यह मितव्ययिता (एकोनोमी) नहीं है ?

हाँ, तो मोहिनी ऐसी ही लड़की है जिसकी एक तीव्र इच्छा है, जो माँ-बाप के पास रहते हुए पूरी नहीं हो पा रही है, और उसे विश्वास है कि विवाह के पश्चात् वह अपनी इच्छा पूरी करवा लेगी। अवश्य करवा लेगी और यदि उसके पति ने उसे वह इच्छा पूरी नहीं करने दी तो वह कचहरी के कटहरे में जाकर कह देगी कि वह अपने पति को छोड़ना चाहती है क्योंकि उसे उसका पति अच्छा नहीं लगता। मोहिनी की इच्छा थी, अपने बाल कटवाने की इच्छा। यानि केश लघु कराने की इच्छा। उसे विश्वास था कि उसकी यह इच्छा एक न एक दिन अवश्य पूरी होकर रहेगी।

मोहिनी मेरी सहेली है, मेरी फ्रैण्ड है, बहुत गहरी फ्रैण्ड, जो मेरे से एक दिन भी अलग होते समय दुःखी होती है, पर वही मोहिनी विचारों के बाज़ार में आकर मुझसे मुख मोड़ लेती है और कहती है—'कला, तुम पुराने विचारों की लड़की हो और मुझे पुराने विचारों की लड़की पसन्द नहीं है और इसलिए तुम भी पसन्द नहीं हो।'

यह झगड़ा हमारा किसी एक-आध दिन होता हो, ऐसा नहीं है, प्रायः रोज़ होता। बाज़ार कपड़ा खरीदकर दर्जी की दुकान तक पहुँचते तो इतना ज़बरदस्त होता कि आस-पास के लोगों को भी पता लग जाता कि दो लड़कियाँ झगड़ रही हैं। कितनी मूर्ख हैं, इतना भी नहीं जानतीं कि यह दर्जी की दुकान है।

वह चाहती है कि ऐसा ब्लाउज़ बनवाया जाय जिसमें सारी भुजा नग्न हो और मैं चाहती कि ऐसा ब्लाउज़ बनवाया जाय जिसमें कम-से-

कम आधी भुजा तो ढकी हुई हो। विवाह के पश्चात् तो ऐसा ब्लाउज़ चल सकता है और वह भी तब जब पति ऐसा करने को मजबूर करे, नहीं तो भारतीय नारी को यह शोभा नहीं देता।

मोहिनी ऐसी लड़की है जो मानती है कि पुरुष और स्त्री को समान अधिकार प्राप्त हैं। यानि स्त्रीमें अब जागृति आगयी है और अब वह वह स्त्री नहीं रही जो आज से ५० साल पहले की स्त्री थी। जिसको खिलौना समझा जाता था। और विवाह कराने के बाद उस खिलौने को एक कोने में रख दिया जाता और वह खिलौना अर्थात् जीवित खिलौना यानि चेतनामय खिलौना उस कोने में ही पड़ा रहता जब तक वह टूट नहीं जाता और जब टूट जाता तब उसे फेंककर बिना किसी प्रकार का दुःख प्रकट किये, नया खिलौना खरीद लिया जाता। दुःख होता भी तो केवल इतना कि पुराना खिलौना खरीदते समय कुछ रुपये खर्च हो गये थे और अब दूसरा खिलौना खरीदते समय कुछ और रुपये लग जायेंगे। पर खिलौना खरीदना तो ज़रूर पड़ेगा, आखिर खेलने के लिए खिलौना तो चाहिए ही ! फिर वह कोना भी तो सूना लग रहा है।

मोहिन अब पुरुष को ऐसा नहीं करने देगी। अपने पुरुष को तो क्या, किसी भी पुरुष को ऐसा नहीं करने देगी। और हर लड़की को, हर स्त्री को, हर पत्नी को यह बताएगी कि वे अपने उन पतियों को, जो उन्हें खिलौना समझते हैं, छोड़ सकती हैं, आसानी से छोड़ सकती हैं, एक आवेदन-पत्र से छोड़ सकती हैं और कानूनन छोड़ सकती हैं।

मुझे मोहिनी के इस प्रकार के विचार कई बार अच्छे नहीं भी लगते थे। और मैं कई बार उससे बहस भी कर लेती थी और अन्त में हार-जीत किसी की भी नहीं होती और हम थोड़ी देर तू-तू मैं-मैं करके

फिर एक दूसरे के गले लग जातीं। और जब वह थोड़ा शान्त हो जाती तो मैं कहती—

'मोहिनी, तुम सचमुच ऐसे विचारों की हो या कि मुझसे केवल झगड़ने या बहस करने के लिए अपने को मेरा विरोधी बना लेती हो?'

तर्क करना आज के विवेकशील प्राणी को अच्छा लगता है। वह तो आदमी ढूंढ-ढूंढ कर तर्क करना चाहता है और हर समय अपना रूप बदलकर तर्क करना चाहता है। काँग्रेसी नेता के सामने वह समाजवाद का पक्ष लेता है और वही समाजवादी दृष्टिकोण वाला प्राणी समाजवादी के सामने समाजवाद का खण्डन करने लग जाता है।

आज का प्राणी आर्यसमाजी के सामने सनातनी बन जाता है तो सनातनी के सामने आर्यसमाजी बनने का ढोंग रच लेता है। आस्तिक के सामने वह नास्तिक बनता है तो वही नास्तिक के सामने ईश्वर की सत्ता के उदाहरण देने लग जाता है। सच तो यह है कि आज का बुद्धिजीवी प्राणी जो सोचता है कि उसमें आज बुद्धि आ गई है—हालाँकि उसका यह सोचना निराधार है——क्योंकि बुद्धि के आ जाने पर उसकी तर्क-शक्ति कम हो जाती है, और मनन-शक्ति बढ़ जाती है। जो आदमी दूसरों को बुला-बुला कर तर्क करता है, पूछता है 'पुराना अच्छा या नया' और यदि नया अच्छा है तो वह इस बात का खण्डन करने को तैयार है। यदि दूसरा मान भी ले कि पुराना अच्छा है तो वह अपनी ही बात का फिर खण्डन करता है और फिर साबित करता है कि नया अच्छा है।

आज का विवेकशील प्राणी जो सोचता है कि उसमें विवेक आ गया है। जितना समय 'भगवान् है या नहीं' के वाद-विवाद में नष्ट कर

देता है उसका एक प्रतिशत भी भगवान् के ध्यान में नहीं लगाता।

इसलिए मुझे मोहिनी पर भी सन्देह होने लगा कि कहीं वह मेरी ही तरह त्यागप्रिय श्रौर पुराने को श्रच्छा मानने वाली ही नारी तो नहीं है ? श्रौर केवल मुझसे विरोध करने के लिए ही श्रपना रूप बदल लेती है।

क्योंकि श्राज की दुनियाँ मानती है कि तर्क करने से मस्तिष्क को भोजन मिलता है।

पर मैंने पाया कि मोहिनी सचमुच श्राधुनिकता की पुजारिन है।

मोहिनी कहती--श्राज हर नारी को मिलकर पुरुष से बदला लेना चाहिए। उस पुरुष से जो श्राज तक स्त्री को कष्ट देता श्राया है, उस पुरुष से, जो श्रपनी पत्नी को, उस पत्नी को जो भूल से भी श्रपने ठिकाने या कोने से उठकर खिड़की तक श्रा जाती, उसे उसी खिड़की से नीचे फेंक देता, या कहता तुम बाहर नहीं जा सकती हो, लक्ष्मण–रेखा पार नहीं कर सकती हो, श्रौर मैं, मैं तो पुरुष हूँ ही, मुझे तो श्रधिकार है ही। वह श्रपने पुरुषत्वके श्रभिमान में सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात न जाने कहाँ रहता है श्रौर जब चाहे घर श्रा जाता है, या जब चाहे घर से चला जाता है।

श्राज श्रादमी श्रपनी मनमानी नहीं कर सकता। श्राज वह श्रकेले कहीं नहीं जा सकता। सिनेमा भी श्रकेला नहीं देख सकता। यदि श्रकेला चला भी जाता है तो उसे श्रपनी पत्नी से श्राकर क्षमा माँगनी होगी श्रौर कहना होगा 'मुझसे भूल हो गई है। साथियों ने इतना श्राग्रह किया कि मुझे जाना पड़ गया है, नहीं तो मेरी इच्छा बिलकुल नहीं थी।'

हाँ, इस प्रकार का श्रादमी इस ज़माने में ज़िन्दा रह सकता है।

ऐसा लगता जैसे मोहिनी ने सारे आदमियों को सुधारने का ठेका ले लिया हो। मैं चुपचाप मोहिनी की बातें सुनती रहती। मुझे पता था कि यदि मैंने कहीं विरोध प्रकट कर दिया तो मोहिनी मेरे पर बरस पड़ेगी और फिर थमने का नाम नहीं लेगी।

कई बार तो मोहिनी मेरे साथ वाद-विवाद करते समय उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं रखती और भावुकता में आकर कह जाती 'जब आदमी सिगरेट पी सकता है तो स्त्री क्यों नहीं पी सकती ? अगर वह दो घूँट पी सकता है और घर आकर कहता है—'मैंने तो स्वास्थ्य-रक्षा के हेतु पी है, वैसे मेरी कोई इच्छा नहीं थी। दो घूँट पी लेने से—नियमित रूप से पी लेने से—पेट की कई बीमारियाँ दूर हो सकती हैं।' तो फिर स्त्री उसी चूर्ण को—लक्कड़हज़म पत्थरहज़म चूर्ण को, जिससे पेट की बीमारियाँ दूर होती हैं, क्यों सेवन नहीं कर सकती ?'

तर्क-शक्ति मोहिनी में बहुत ज़्यादा थी। बहस करने में तो वह इतनी तेज़ थी कि लगता था कि आदमी भी उसके सामने आकर पानी भरने लगेगा।

मोहिनी तो कई बार करवाचौथ के व्रत वाले दिन अपनी माँ से भी यह कहती नहीं चूकती—

'माँ, तुम यह व्रत क्यों रखती हो ?'

'बेटी, इस व्रत में भगवान् से यह प्रार्थना की जाती है कि भगवान् ! अगले सात जन्मों में भी यह ही मेरा पति बने।'

'माँ, यह प्रार्थना केवल स्त्रियाँ ही क्यों करती हैं, पुरुष क्यों नहीं करता ?'

और माँ चुप हो जाती।

मोहिनी चाहती थी कि स्त्री-पुरुष हर काम में एक-से ही साँझी-दार हैं। पुरुष स्वयं तो कोई प्रार्थना न करे, एक बार टूटी हुई ज़बान से भी भगवान् से न कहे—'इस जीवन में यह पत्नी पूरा साथ निभा दे।' क्या यह उचित है ?

मोहिनी मानती कि यह भी एक प्रकार का पुरुष का अभिमान ही है। वह सोचता है, मैं स्त्री से शक्ति में बढ़ा हूँ, बुद्धि में बढ़ा हूँ और फिर मैं पुरुष हूँ।

और मोहिनी कहती कि वह विवाह के पश्चात्—विवाह तो मोहिनी का एक न एक दिन होना ही है—तब तक यह व्रत नहीं रखेगी जब तक उसका पति भी उसके साथ व्रत नहीं रखेगा।

यह कैसा ढोंग है कि पत्नी व्रत रखे, सारे दिन भूखी रहे और महाराज अपना मौज करें। पत्नी भगवान्‌से प्रार्थना करे कि सात जन्म यही मेरा स्वामी बने और पतिदेव कहें 'भगवान् इसे उठाना भी हो तो जल्दी उठा लो ताकि कहीं अच्छी जगह प्रबन्ध हो सके। मैं रोज़ दाल खा-खाकर परेशान हो गया हूँ।'

मोहिनी को मैं अच्छी तरह से जान गई थी और पहचान भी गई थी। उतना ही पहचान गई थी जितना पाँच वर्ष साथ रहकर पहचाना जा सकता है। वैसे तो ठीक ढंग से आदमी के मन को समझने के लिए पूरा जीवन भी कम है।

चार

मेरे पिता जी का देहान्त उसी दिन हो गया जिस दिन वे सदर बाज़ार से दवाई लेने गये थे। १०३ बुखार में पैदल दवाई लेने !

कुछ पैसे बचाने के लिए उन्होंने अपना जीवन खो दिया। मरने से पहले वह एक काम कर गये। हाँ, बहुत ज़रूरी काम। वह मेरी सगाई शंकर से पक्की कर गये। मरने से पहले अपने दिमाग को एकदम हलका कर गये थे।

संयोग से उसी शाम, शंकर के पिता देवीदयाल हमारे घर आ गये थे। संयोग की ही बात हो सकती है। उनके आने की न कोई खबर थी, न उम्मीद ही। एकदम ऐसे ही आ गये। मानो भगवान् ने उन्हें कह दिया हो—'देवीदयाल, जल्दी दिल्ली जाओ, जालन्धर में क्यों बैठे हो? लाला राधेश्याम बीमार है, काफी बीमार है और जल्दबाज़ी में वह अपनी कला की सगाई तुम्हारे शंकर से कर देगा। नहीं तो तुम जानते ही हो कि लाला कितना ज़ालिम है। शंकर की इतनी जाँच-पड़ताल करेगा कि तुम हाथ मलते ही रह जाओगे।'

लोगों का यह कहना ठीक ही है कि विवाह तो ऊपर के लोक में ही निश्चित हो जाता है, यहाँ तो केवल गठबन्धन का काम होता है।

और उस दिन अन्तिम क्षणों में मेरे पिता जी के मुंह से जल्दी में निकल गया—'मुझे मंज़ूर है।'

हाँ, देवीदयाल बड़ी देर से मेरे पिता जी के मुँह से यही शब्द निकल-

वाने का प्रयत्न कर रहे थे और अन्त में जीत उनकी ही हुई। और हार मेरी। हाँ, मेरी हार। पिता जी तो अपनी जान छुड़ाकर चले गये, और मुझे शंकर के लिए छोड़ गये।

पिता जी के मरने के ठीक एक साल बाद—ठीक नहीं तो दो-चार दिनों का हेरफेर हो सकता है—मेरी शादी शंकर के साथ कर दी गई।

विवाह की तारीख आज भी मुझे याद है, भले ही आज मेरे विवाह को पन्द्रह वर्ष से अधिक समय हो चुका है। अपने विवाह की तारीख याद रखना वैसे कोई बड़ी बात नहीं होती। शायद सभी को अपने विवाह की तारीख याद रहती है। एक-दो वर्ष क्या, अन्तिम दिन तक याद रहती है।

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसे अपने विवाह की तारीख भूल गई हो। विवाह की तारीख सभी को याद रहती है, ठीक ऐसे जैसे अपने जन्म की तारीख सबको याद रहती हैं। और विवाह भी तो एक प्रकार का नया जन्म ही है। पहले वाले जन्म से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण। और लड़की के लिए तो यह सचमुच का नया जन्म होता है। लड़की के लिए, जो अपने माँ-बाप को, अपने भाई-बहिनों को छोड़कर दूसरे के घर चली जाती है और फिर एक उस आदमी के साथ जो उसके लिए अजनबी होता है,जिसे लग्न-मण्डप में खड़े होते ही वह अपना सबसे प्यारा साथी, पति, स्वामी, रक्षक और भगवान् मान लेती है। उस अजनबी को जिसे उसने देखा नहीं होता, जिससे कभी बात नहीं की होती, या कि जिसके बारे में उसने कुछ सुना नहीं होता कि वह आदमी आदमी है कि देवता, मानव है कि दानव—आज के विचारों का है कि पुराने विचारों का, आजकल के विचारों का है तो केवल अपने लिए या मेरे लिए भी। कहीं

ऐसा तो नहीं कि वह कहे कि मैं आजकल के विचारों का हूँ और तुम आजकल के विचारों की नहीं बन सकती। या फिर मैं तो पुराने विचारों का हूँ और तुम आजकल के विचारों की बनकर रहो। खूब सजधज कर रहो।

या कि वह रोज़ आर्यसमाज में जाकर हवन-मन्त्र बोलता है। या रोज़ अपने घर ही सन्ध्या करता है। फिर वह मुझसे भी पूछेगा कि पूरी संध्या याद है? है, तो सुनाओ। और नहीं याद है, तो याद करो।

मुझे आज भी याद है, पूरा भले न याद हो, थोड़ा तो जानती ही हूँ कि उस दिन लग्न-मण्डप में सोच रही थी, जैसे कि हर लड़की सोचा करती है कि मेरी उनसे बनेगी या नहीं, या कि वह मुझसे प्यार करेंगे या कि नहीं, मुझसे स्वेच्छा से विवाह कर रहे है या कि उन पर किसी प्रकार का बन्धन डाला गया है। या कि मुझे अपने अधीन दबाकर रखेंगे और मुझ पर हुक्म चलाएँगे या कि मेरे द्वारा उन पर हुक्म चलाया जाना उन्हें बुरा नहीं लगेगा। हर समय अपनी ही ज़िद्द पूरी करेंगे या कि मेरी बात मानने में उन्हें अधिक सन्तोष होगा और अन्त में सोचती, वह मेरे साथ बाज़ार चलते अच्छे तो लगेंगे?

वह मुझसे प्यार तो करेंगे?

और मेरी शादी शंकर से हो गई।

पहली बात तो यह है कि मुझे उनका नाम बताने में भी उतना ही संकोच होना चाहिए था जितना कि एक भारतीय महिला को होता है, नहीं तो यदि उनका नाम लेना ही है तो पूरा नाम लेकर अन्त में 'जी' भी लगाना ज़रूरी है, पर इसके लिए मुझे दोनों क्षमा करेंगे। पाठक-वर्ग और मेरा शंकर भी।

मैं नये घर में आ गई। अपनी माँ और भाइयों को रोता छोड़कर। उस घर को छोड़कर, जिस घर में मैंने अपने जीवन के १९ वर्ष काटे थे। उन भाइयों को छोड़कर, जिनको मैंने अपने से भी ज़्यादा प्यार किया था। उन भाइयों ने स्वयं ही मेरा हाथ शंकर के हाथ में दे दिया।

मेरा नया घर जालन्धर में था। उस घर में एक एक शंकर था, शंकर की एक बहिन रानी थी और थे शंकर के पिता।

शंकर पच्चीस वर्ष का एक युवक था, देखने में बहुत सुन्दर। इससे ज़्यादा मैं क्या कह सकती हूँ। आदतें और स्वभाव पता करने में तो कुछ दिन लगते ही हैं।

× × ×

विवाह हुए अभी चार ही दिन हुए थे। शंकर के चेहरे से उस दिन साफ दिखाई दे रहा था कि शंकर ने शराब पी रखी है, शराब। हाथ-पाँव काबू में नहीं थे। आँखें लाल थीं। सीढ़ियाँ भी ठीक तरह से नहीं चढ़ पा रहा था।

मैंने अपने जीवन-काल में पहली बार शराबी की हालत देखी थी। किसी और को देखती तो भी कोई बात थी। मैंने पहली बार अपने ही पति को शराबी के रूप में देखा। सुन तो रखा था कि शराबी ऐसे होते हैं, पर उस दिन अपनी आँखों से देख भी लिया था।

शंकर एक सीढ़ी चढ़ता, फिर थोड़ा रुक जाता, फिर कदम उठाता और अगली सीढ़ी पर रखता, पर वह कदम अगली सीढ़ी पर न रखकर पहले वाली सीढ़ी पर ही रखा जाता और वह फिर थोड़ी देर के लिए रुक जाता, मानो उसने एक सीढ़ी और चढ़ ली हो, पर होता यह कि वह वहीं का वहीं खड़ा रहता।

कई बार तो वह अपना मुँह मोड़ लेता और दो सीढ़ी नीचे उतर जाता, फिर सोचता, नहीं मैं तो अभी ऊपर नहीं पहुँचा हूँ।

उस समय ठीक रात के बारह बजे थे। और मैंने खाना नहीं खाया था। मुझे माँ-बाप ने यही समझा रखा था कि स्वामी को खाना खिलाने के बाद ही खाना खाना अच्छा होता है।

मुझे उस समय अपने शंकर से डर लगने लग गया था। इतना तो मुझे विश्वास हो गया था कि उसने पी रखी है। एक बार मैंने सोचा, मैं भाग-कर पिता जी के पास चली जाऊँ। हाँ, शंकर के पिता जी के पास। फिर मैंने सोचा, जब अपने पर बनी है तो अपने आप समेटना ही ठीक रहेगा।

मैं हिम्मत करके नीचे गई। शंकर की एक बाँह अपने कंधे पर रखकर उसे ऊपर ले आई। उस रात उसने मुझसे इतनी बहकी-बहकी बातें कीं कि जिनके सिर-पैर का भी मुझे पता नहीं चला।

ऐसे समय में धीरज रखना भी कठिन हो जाता है और गुस्सा आ जाता है। पर मैंने उस रात शंकर से कुछ नहीं कहा। इतना भी नहीं कहा—'आपने शराब पी रखी है। यदि पी है तो क्यों पी है?'

मेरा विश्वास था कि धैर्य से स्थिति सँभल जाती है और गुस्से से बिगड़ जाती है। हो सकता है कि मैं इनसे कुछ पूछूँ और फिर यह मुझ-से नाराज़ हो जायें, या यह नाराज़ न भी हों, तो वार्तालाप में पिता जी उठ जायें और फिर अपने पिता को देखकर शंकर सारा गुस्सा मेरे पर ही निकाल दे। यानि मुझसे नाराज़ हो जाय या कि रूठ जाय और हो सकता है कि गुस्से में आकर मुझ पर हाथ भी उठा बैठे।

शंकर काफी देर तक बहकी-बहकी बातें करता रहा। अपने आप ही प्रश्न करता और अपने आप ही उनका उत्तर भी देता।

'तुम कौन हो?'

'ओह, हाँ, मैं तुम्हें नहीं पहचान सका, कितना पाग ल हूँ मैं। अरे तुम तो मेरी पत्नी हो, मेरी सुन्दर पत्नी। इधर आओ, मेरे पास बैठो। अरे आओ भी न!'

और फिर शंकर कहता --'तुम पीओगी? बस एक घूँट पी लो।'

और इतने में शंकर ने अपनी पेण्ट की जेब में से शराब की एक बोतल निकाली और फिर उसका ढक्कन खोला। फिर मेरा हाथ पकड़ा और फिर सारी वोतल मेरे हाथ पर उलटा दी।

और फिर शंकर कहने लगा—'पीओ, पीओ, अरे अमृत है।'

मैं चुपचाप शंकर के चेहरे की ओर देखती रही और देखती रही कि इस सुन्दर चेहरे को इस बोतल ने कितना विकृत कर दिया है।

इतने में शंकर ने मेरा वही हाथ, जिस पर शराब की बोतल उलटा दी थी, मेरे मुँह के साथ लगा दिया।

शायद शंकर मेरे हाथ को गिलास समझे बैठा था। मेरा हाथ मेरे अधरों को स्पर्श कर गया और अधर जिह्वा को स्पर्श कर गया, जिह्वा, जो बता देती है कि स्वाद कैसा है, मीठा कि कड़ुवा। और जिह्वा को लगा कि यह तो कोई बहुत कड़ुवी चीज़ है।

× × ×

एकाएक शंकर की आँख लग गई थी और मैं भी उठकर अपनी चारपाई पर चली गई थी। सो मैं कैसे सकती थी! मुझे तो अभी कुछ सोचना था। अपने बारे में कुछ सोचना था। शंकर के बारे में सोचना था।

ऐसे समय में एक साथ मस्तिष्क में कितने विचार आ जाते हैं, यह

मुझे उस दिन प्रतीत हुश्रा। उन विचारों में कोई क्रम भी नहीं होता। श्रपने श्राप प्रश्न हो जाता है श्रौर श्रपने श्राप कहीं से उसका उत्तर भी मिल जाता है।

शंकर मेरा पति है।

हाँ, चार रोज़ ही तो हुए हैं उसे मेरा पति हुए।

शंकर शराबी है क्या ? पता नहीं, रोज़ पीता है या कि श्राज ही पी है, या कि वह भी स्वेच्छा से पी है, या किसी मित्र के श्राग्रह श्रौर श्रधिकार का पालन किया है।

किसी ऐसी भयंकर परिस्थिति में फँस गया होगा जहाँ से इसका बच निकलना बड़ा मुश्किल हो गया हो।

नहीं, इसने तो मना भी कर दिया हो श्रौर दूसरों ने ज़बरदस्ती इसे पिला दी हो। हाँ, बोतल मुँह से लगा दी हो।

पर यह तो श्रच्छी बात नहीं है, शंकर शराब पीता है, शराबी है। नहीं नहीं, शंकर शराबी नहीं है, न हो सकता है। वैसे ही किसी ने ज़बरदस्ती पिला दी होगी। पहले तो मैंने इसे कभी शराब पीते नहीं देखा।

हाँ, श्रागे तो कभी शराब पीते नहीं देखा है।

श्रभी तुम्हें शंकर के पास श्राये दिन ही कितने हुए हैं, केवल चार श्रौर उसमें से भी वह एक दिन घर से बाहर रहा था। कह गया था दुकान पर काम है श्रौर फिर एक दोस्त की शादी पर भी जाना है। दोस्त की शादी का तो बहाना ही था। उस दिन भी वह शराब पीने ही गया होगा।

पर मुझे ऐसा सोचना नहीं चाहिए। श्रभी श्राये मुझे केवल चार

दिन ही तो हुए हैं और मैं अपने शंकर पर शक करने लग जाऊँ। या यह कहूँ कि वह मेरे से झूठ बोलकर बाहर जाता है, ठीक नहीं होगा। शंकर ने जानबूझ कर शराब नहीं पी होगी, ज़बरदस्ती ही किसी ने पिला दी होगी। यही मान लेना ठीक रहेगा। और उस रात अन्त में मैंने यही मान लिया कि शंकर ने जाव-बूझ कर शराब नहीं पी है, किसी ने ज़बरदस्ती ही उसे पिला दी है।

हाँ, ज़बरदस्ती ही। शंकर की इच्छा के विरुद्ध। और फिर शंकर शराबी नहीं है। यदि पीता है, तो ज़बरदस्ती करने पर, दोस्तों की ज़बरदस्ती करने पर। वैसे मेरा शंकर शराबी नहीं है, न हो सकता है।

फिर ध्यान आया कि शंकर की अपनी दुकान है। बेचारा सारा दिन वहीं बैठता है और जब भी कहीं जाता होगा, पिता जी से पूछकर ही जाता होगा।

फिर सोचा कि क्या आज भी शराब पीने पिता जी से पूछकर ही गया होगा। नहीं पूछकर कैसे जा सकता है। कौन पिता अपने पुत्र को शराब पीने की अनुमति दे सकता है। तो फिर कोई बहाना बनाकर ही गया होगा। बहाना बनाकर, नहीं बहाना शंकर ने नहीं, इसके दोस्तों ने बनाया होगा, जिन्होंने इसे ज़बरदस्ती शराब पिला दी है। संगति का ही असर है और फिर मैं धीरे-धीरे इसकी संगति ही बदल दूंगी। इतनी तो मेरे में सामर्थ्य होनी ही चाहिए।

पाँच

शंकर जब सुबह उठा तो वह मुझसे आँख नहीं मिला सका। मैंने अनुमान लगा लिया कि शंकर अपने आपमें बहुत शर्मिंदा हो रहा है। इतना शर्मिंदा कि वह मुझसे बोल भी नहीं रहा है। उसे जो चाहिए वह स्वयं खोज लेगा, मुझसे कुछ नहीं पूछेगा।

मैं भी मन ही मन सोचती रही कि शंकर रात के किये का प्रायश्चित्त कर रहा है और इतना शर्मिंदा है कि शर्म के मारे उसकी आँखें धरती में गढ़ती जा रही हैं। और फिर समझदार आदमी के लिए इतना ही काफी होता है। और जिसको सीख जाना होता है वह इसी से सीख जाता है और जिसको नहीं सीखना होता, वह नहीं सीखता। कभी भी नहीं सीखता। और शंकर सीखने वाला आदमी लगता है। काफी समझदार है, जो मुझसे बात नहीं कर रहा है। गुसलखाने जाते समय आज तौलिया भी नहीं माँगा।

मैं मन ही मन खुश हो रही थी। चलो मेरी यह धारणा तो ठीक निकली कि शंकर शराबी नहीं है और रात उसने जो पी है वह जबरदस्ती पी है। न इच्छा होते हुए ही पी है। अब वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा है। कहकर न सही, मौन रहकर ही सही। और जो भूल मौन रहकर स्वीकार की जाती है वह अधिक सशक्त और प्रभावशाली होती है। उसमें आदमी के फिर भूल करने का अन्देशा नहीं रहता; यदि रहता भी है तो बहुत कम।

शंकर गुसलखाने में स्नान करने गया था। इतने में राजेश वहाँ आ पहुँचा। मेरा बड़ा भाई। मुझे लेने आया था। मुझे राजेश की प्रतीक्षा भी थी और मैं तो सोच रही थी कि वह विवाह के दूसरे दिन ही आ पहुँचेगा पर दिल्ली से जालन्धर आने की बात थी।

मैं सब कुछ भूलकर एक बार राजेश की आवाज़ सुनकर फिर खुश हो गई। कुछ क्षणों के लिए तो मस्तिष्क से वह सब बोझ, जिसने मुझे रात काफी देर तक जगाये रखा था, हट गया।

राजेश नीचे पिता जी के पास जाकर बैठ गया, हालाँकि मैं चाहती थी कि वह पहले मेरे पास आये। पर नहीं, राजेश अब काफी समझदार हो गया है। समझदार क्या हो गया है, समय सब सिखा देता है। बेचारे पर छोटी-सी उम्र में इतने भार आन पड़े हैं। मेरी शादी भी तो राजेश ने ही की है। सारी शादी अकेले राजेश ने ही की है। केवल तो अभी बच्चा है।

एक बार तो विचार आया कि मैं ही भागकर राजेश के पास चली जाऊँ, पर फिर न जाने क्यों रुक गई। फिर सोचने लगी, पिता जी क्या कहेंगे। मै शंकर के पिता को भी पिता जी ही कहकर पुकारती थी और पिता जी ने मुझसे कह भी रखा था कि कला मेरे लिए तुम भी रानी के समान ही हो। मेरे से घूँघट मत निकाला करो। और जब भी किसी चीज़ की ज़रूरत हो मुझसे माँग लिया करो। अब मुझे ही अपना पिता समझो। इतना सब कुछ होने पर भी मैं नहीं गई।

राजेश अब दुनियाँदार हो गया है। बहिन के घर आये और सबसे पहले अपनी बहिन के पास ही जाकर बैठ जाये, और किसी से न बोले यह भी अच्छा नहीं लगता।

फिर थोड़ी देर बाद पिता जी ने खुद ही राजेश से कह दिया—'ऊपर जाओ बेटा, कला ऊपर ही बैठी है।'

राजेश सीढियों से ऊपर चढ़ा रहा था। मैं सोच रही थी, राजेश मुझे झट गले लगा लेगा, और फिर प्यार करेगा। पर नहीं, राजेश ने ऐसा नहीं किया। केवल कंधे पर हाथ रखकर पूछने लगा—'कला कैसी हो ?'

'ठीक हूँ भैया ! घर में सब ठीक हैं ?'

'हाँ, सब ठीक हैं।'

'केवल कैसा है ?'

'ठीक है, पागल है। जिस दिन से तुम आई हो उसी दिन से रो रहा है। कहता है, तब तक खाना नहीं खाऊँगा जब तक दीदी मुझे अपने हाथों से आकर नहीं खिलायेगी। मैंने और माँ ने उसे बहुत समझाया पर वह मानता ही नहीं।'

मैं सोच रही थी कि राजेश कुछ बदला-सा लग रहा है। क्या केवल राजेश ही बदल गया है या कि हर भाई बहिन की शादी हो जाने पर बदल जाता है और सोचने लग जाता है कि इस बहिन पर अब मेरा उतना अधिकार नहीं रहा जितना पहले था, या यह मेरी बहिन अब मुझे उतना प्यार नहीं करती जितना पहले करती थी। और फिर मैं एकदम सोचने लगी कि कहीं राजेश का तो मेरे से प्रेम कम नहीं हो गया है। क्या शादी हो जाने के बाद, मेरा भी उस पर अधिकार तो कम नहीं हो गया। बहिन की शादी कर दी। बस कहीं राजेश भी ऐसा ही भाई है, जो सोचता है—चलो बहिन की शादी कर दी, बोझ उतर गया। एक बोझ था जिससे छुट्टी पानी थी और अब छुट्टी पा ली है।

नहीं नहीं, राजेश ऐसा नहीं है। और मेरा उस घर पर आज भी उतना ही अधिकार है जितना कि आज से ५ दिन पहले था।

राजेश अभी मुझसे बातें ही कर रहा था कि इतने में शंकर स्नान करके बाहर निकल आया। मुझे सन्देह था कि सारी बात खुल न जाये। कहीं शंकर राजेश से अच्छी तरह से बात न करे। और फिर वह सुबह से मेरे से भी तो नहीं बोला है। और यदि वह राजेश से भी अच्छी तरह से नहीं बोलेगा तो गड़बड़ हो सकती है।

पर नहीं, गुसलखाने से निकलते ही शंकर दौड़कर राजेश के गले लग गया। शंकर के चेहरे का भाव एकदम बदल गया। और मुझे शांति मिली।

शंकर और राजेश दोनों कुर्सी पर बैठ गये और खूब हँस-हँसकर बातें करने लगे।

'कहो भाई, राजेश कैसे हो ?'

'मैं तो ठीक हूँ, पर केवल है कि जबसे कला की शादी हुई है, कुछ खाता-पीता ही नहीं।'

'सब ठीक हो जायेगा।'

'आप तो ठीक हैं न शंकर भाई !'

'हाँ, ठीक हूँ।'

और शंकर ने आँखें नीची कर लीं। मैं समझ गई कि शंकर एक बार फिर भूल स्वीकार कर रहा है। मान रहा है कि उससे गलती हो गई है।

इसके बाद शंकर ने मेरी ओर देखा और धीरे से बोला—'कला, तुम चाय बनाओ, मैं राजेश के लिए बाजार से अभी कुछ लेकर आता।

हूँ ।'

'नहीं, शंकर जी, मैं कुछ नहीं खाऊँगा ।'

'कैसे नहीं खाओगे ? दिल्ली से जालन्धर आये हो और कुछ नहीं खाओगे ? चाय भी नहीं पीओगे ?' शंकर ने बड़े अधिकारपूर्वक कहा।

'नहीं, मैं कुछ नहीं खाऊँगा ।'

'और मैं तुम्हें खिलाकर रहूँगा ।' कहकर शंकर सीढ़ियों से नीचे उतर गया ।

शंकर के चले जाने के बाद मैं राजेश के पास बैठ गई और कहने लगी—'भाई, तुम कुछ नहीं खाओगे ?'

'हाँ, बहिन, मैं अपनी बहिन के यहाँ से कुछ नहीं खाऊँगा ।'

'क्यों ?'

'बस वैसे ही ।'

'तुमको मेरी कसम राजेश भैया,तुम्हें कुछ न कुछ खाना ही होगा ।'

'क्या कह रही हो कला ! हमारे यहाँ कोई भाई बहिन के यहाँ नहीं खाता । क्या तुम यह रीति तोड़ देना चाहती हो ?'

इतने में पिता जी ऊपर आ गए थे। पिता जी ने कहा—'राजेश, जिद्द मत करो बेटा ! कुछ खा लो। मैं तुम्हें अपना शंकर ही समझता हूँ। शंकर के यहाँ से न सही, मेरे पैसों से ही खा लो।'

और अन्त में राजेश ने शंकर के साथ बैठकर खाना खाया। खाना खाते-खाते राजेश ने मुझसे कहा—'कला !'

'हाँ भैया !'

'मोहिनी की शादी है ।'

'कब ?'

'इसी शुक्रवार को।'

'अच्छा' कहकर मैं कुछ सोचने लग गई। मैं मोहिनी के बारे में कुछ सोचने लगी। मोहिनी की शादी होने वाली है। इसी शुक्रवार को। तो मुझे जाना चाहिए। फिर इस प्रश्न का मुझे मन ही मन उत्तर मिल गया, राजेश तुम्हें लेने ही तो आया है।

मोहिनी की सगाई जहाँ हुई थी वहाँ के बारे में मैं जानती थी। मोहिनी ने मुझे सब कुछ बता रखा था। यही कि उसकी सगाई भूषण के साथ हुई है। उसका पूरा नाम बृजभूषण है। देखने में सुन्दर है और रेलवे में कहीं सुपरिण्टेण्डेण्ट लगा है। ज़्यादातर दौरे पर ही रहता है। कोई ५००-६०० रु० पाता है। पर वह लड़का मोहिनी को पसन्द नहीं है। उस लड़के की दूसरी शादी है, पहली पत्नी मर गई थी। दो वर्ष हुए हैं उसकी पत्नी को मरे। कोई सन्तान नहीं है। वैसे तो उसकी उम्र भी कोई ज़्यादा नहीं है। यही कोई २७-२८ वर्ष का होगा और मोहिनी भी तो २०-२१ की ही होगी। जोड़ी तो अच्छी है, पर मोहिनी उसे इसलिए पसन्द नहीं करती कि उसकी दूसरी शादी है। और मोहिनी, ऐसे आदमी के साथ विवाह करवाना कभी पसन्द नहीं करेगी जिसकी पहले शादी हो चुकी हो और जिसने तीन वर्ष विवाहित जीवन का आनन्द भोगा हो।

फिर मैं मोहिनी के बारे में सोचती-सोचती कहीं की कहीं भटक गई और मन ही मन कहने लगी—मन से तो कोई लड़की ऐसा नहीं चाहेगी कि उसका विवाह किसी ऐसे आदमी के साथ हो जिसकी पहली पत्नी मर गई हो या उसका सम्बन्ध किसी और लड़की के साथ हो। फिर मेरे साथ तो ऐसा नहीं है। मेरा शंकर तो अच्छा है, बहुत अच्छा

है। भूल से कुछ गड़बड़ कर आया है, और फिर भूल किससे नहीं होती। और भूल करके स्वीकार कर लेना अपने आपमें एक बहुत भारी गुण होता है, जो शंकर में है।

× × ×

मैं उसी दिन राजेश के साथ दिल्ली चली गई। केवल मुझसे अच्छी तरह नहीं बोला। लगता था काफी नाराज़ है। मैंने उसे मनाया और वह मेरे गले लग गया, ऐसे जैसे कई महीनों बाद वह मुझसे मिल रहा हो।

केवल कहने लगा—'बहिन, तुम अब तो नहीं जाओगी ?'

'नहीं जाऊँगी। अगर जाऊँगी भी तो तुम्हें साथ लेकर जाऊँगी।'

फिर मैं भागकर मोहिनी के पास गई। और मोहिनी मुझे देखते ही उठी और गले लग गई।

उस रात मैं मोहिनी के साथ सोई। मोहिनी ने मेरे से वह सब पूछा जो एक सखी अपनी उस सखी से पूछती है जिसका अभी-अभी विवाह हुआ हो या कि विवाह के बाद पहली बार वह उसे मिली हो।

मैंने मोहिनी के हर प्रश्न का उत्तर दिया हो यह तो मैं नहीं कहती। हाँ, जिन प्रश्नों का उत्तर दिया वह खूब सोच-समझ कर दिया। यानि चाहिए तो मुझे यह था कि मैं मोहिनी को हर बात साफ-साफ बता देती और यह भी बता देती कि एक रात शंकर ने पी थी। बहुत ज़्यादा पी थी, पर वह शराबी नहीं है। किसी ने ज़बरदस्ती उसे पिला दी थी। और वैसे मैं शंकर के साथ बहुत खुश हूँ। पर नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने मोहिनी को सब कुछ बताया पर शराबी शंकर के बारे में एक शब्द भी नहीं बताया—ऐसी विकट स्थिति में जब कि दो सखियाँ मिलें, ऐसी

सखियाँ, जो इकट्ठा खायें, इकट्ठा पियें, इकट्ठा पहिनें और इकट्ठा सोयें, और सब कुछ बताएँ, जो उन्हें बताना चाहिए, ऐसा कम ही होता है।

मैंने मन ही मन सोच लिया था कि यह बात—शंकर के शराब पीने वाली बात—मैं किसी से नहीं कहूँगी—मोहिनी से भी नहीं। और मैंने वह मोहिनी को नहीं बताई। मैंने प्रयत्न किया कि मोहिनी मुझे सब कुछ बता दे। हाँ, अपने भूषण के बारे में सब कुछ बता दे। और बता दे कि वह क्या-क्या सोच रही है और उसका भूषण के साथ विवाह होना उसे अच्छा लग रहा है या नहीं, उस भूषण के साथ जिसकी दूसरी शादी है और मोहिनी को ऐसे आदमी से विवाह करवाना अच्छा लग रहा है या नहीं। मोहिनी अपने विवाह से खुश भी है या नहीं।

तुलना की भावना हर लड़की में होती है। सखियों में और सहेलियों में भी होती है। और इस तुलना की भावना से जो निष्कर्ष निकाल लिया जाता है उसको प्रकट नहीं किया जाता। और इस बात का भी प्रयत्न किया जाता है कि उस निष्कर्ष से निकले सन्तोष अथवा असन्तोष के भाव भी चेहरे पर न आयें।

कोई भी दो सखियाँ, बहुत गहरी सखियाँ, जब एक दूसरे से मिलती हैं और एक दूसरे से हाल-चाल या नये घर का वातावरण पूछती हैं तो उनमें एक प्रकार की तुलना हो जाती है। स्वाभाविक रूप से तुलना हो जाती है। यानि कोई एक सखी अपनी दूसरी सखी का सुन्दर पति जब देखती है तो झट उसका ध्यान अपने पति के रूप पर जाता है और वह एकदम सोचती है कि मेरा पति इससे ज़्यादा या कम सुन्दर है। ज़्यादा है तो उसके मन को एक प्रकार का सन्तोष और कम सुन्दर हो

तो एक प्रकार का असन्तोष होता है, पर इस सन्तोष अथवा असन्तोष के भाव को प्रकट नहीं किया जाता। पर तुलना तो हो ही जाती है, न चाहते हुए भी हो जाती है, स्वाभाविक रूप से हो जाती है। गहरी से गहरी, पक्की से पक्की सखियों में भी हो जाती है।

यह तुलना केवल स्त्रियों में ही होती हो, ऐसा नहीं है; मैं तो मानती हूँ कि यह तुलना पुरुषों में भी होती होगी। ठीक इसी प्रकार की तुलना। और जब एक मित्र दूसरे मित्र की पत्नी को अपनी पत्नी से अधिक सुन्दर या असुन्दर पाता होगा तो उसमें भी एक असन्तोष अथवा सन्तोष का भाव आता होगा, वह भाव लहर की भाँति आता होगा जिसका यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कब आया और कब गया।

ये सब बातें इतनी साधारण हैं कि हर कोई जानता है। इसलिए जो समझदार है वह ऐसी चीज़ें छिपा लेता है जो छिप सकती हैं। मैंने भी शंकर के शराब पीने वाली बात छिपा ली थी। कोई कहना चाहे तो इसे मेरी चालाकी और अपनी सखी के साथ विश्वासघात भी कह सकता है। पर मैं यह भी मानती हूँ कि अगर ऐसी बात बता दी जाय तो इससे लाभ कम और हानि अधिक होने की सम्भावना है। और कौन किसकी सहायता करता है, ऐसे कामों में तो कोई नहीं करता। माँ-बाप, भाई-बहिन भी नहीं करते। फिर वह तो मेरी सहेली थी। ऐसी सहेली जिससे मेरे विचार नहीं मिलते, दृष्टिकोण नहीं मिलता।

मैं इस बात का दावा नहीं कर रही हूँ कि मैं बहुत चालाक हूँ और जो मुझे अपनी सखी से कह देना चाहिए था वह मैंने नहीं कहा। पर मोहिनी को जो कुछ नहीं कहना चाहिए था वह उसने मुझे सब बता दिया। वह सब भावुकता में कह गई थी। जो भावुक होते हैं वे काफी

कठिनाई से ही कोई बात अपने मन में छिपा सकते हैं। और भावुक तो थोड़े से कष्ट से घबड़ाकर रोना-चिल्लाना शुरू कर देता है। जैसा कि मोहिनी ने कर दिया था। पर मेरे जीवन में तो कष्ट सहना लिखा था। मैं कैसे यह सब बता सकती थी।

मोहिनी ने मुझे बता दिया कि वह अपनी शादी से प्रसन्न नहीं है और वह किसी लड़के से प्रेम करती है। किसी लड़के से, किसी अविवाहित लड़के से प्रेम करती है और वह उसका नाम बताने को बिल्कुल तैयार नहीं है। वह भूषण से ब्याही जा रही है तो क्या हुआ, शरीर से भूषण के साथ ब्याही जा रही है पर मन से वह किसी और की है। और मन से वह जिसकी है, उसका वह न नाम बताने को तैयार है, न धाम। अपनी सखी को भी उस लड़के का नाम नहीं बताएगी। पर यह ज़रूर कहेगी—

'कला, मैं मोहिनी हूँ। मोहिनी कोई छोटी-मोटी लड़की नहीं है कि जिससे माँ-बाप ज़बरदस्ती कर लें। माँ-बाप की ज़बरदस्ती तो तुमने देख ली है कला, अब मेरी भी ज़बरदस्ती सुन लो। मैं एक लड़के से प्यार करती हूँ जो अविवाहित है। भूषण से ब्याही जाने पर भी मैं उस लड़के से प्यार करती रहूँगी, ज़रूर करती रहूँगी। आदमी आखिर अपने आपको समझता ही क्या है! वह एक विवाह करवाये। फिर उसका खिलौना टूट जाये, कि वह दूसरा खिलौना ले आये, और दूसरा टूट जाये तो वह तीसरा खिलौना ले आये और तीसरा टूट जाये तो वह चौथा खिलौना ले आये और चौथा खिलौना लेते समय यह भी भूल जाय कि यह खिलौना तो बहुत छोटा है और मैं अब काफी बड़ा हूँ। और अब मुझे इतने छोटे खिलौने के साथ नहीं खेलना चाहिए। वैसे तो मुझे अब खेलना ही नहीं

चाहिए। यदि खेलना ही है तो किसी पुराने खिलौने के साथ, जो उतना ही पुराना हो, जितना मैं स्वयं हूँ।'

मोहिनी यह कहते-कहते इतनी गम्भीर हो गई कि मैं अब उससे किसी प्रकार का व्यंग्य करते भी डरने लग गई।

मैंने केवल इतना ही कहा—'मोहिनी, क्या कह रही हो ?'

'कला, मैं ठीक कह रही हूँ। मैं आदमी की इस नीच भावना को बदल देना चाहती हूँ।'

'तुम अकेली कैसे बदल सकती हो ?'

'मैं अकेली ही बदलूंगी कला ! मैं अकेली हूँ बदलूंगी। औरत अगर डट जाये न कला ! तो भगवान् का सिंहासन भी हिला सकती है, फिर यह तो पुरुष जाति है।'

मैंने फिर कहा—'मोहिनी, तुम करोगी क्या ?'

'मैं उस लड़के से प्रेम करूँगी, जिससे अब करती हूँ।'

'विवाह हो जाने के बाद भी करोगी ?' मैंने अचम्भे के-से भाव से पूछा।

'हाँ, विवाह होने के बाद भी मैं उस लड़के से प्रेम करूँगी। क्या पुरुष विवाह होने के बाद किसी दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं करता ?'

'तो तुम सोचती हो कि तुम अकेली सारे पुरुषों को बदल दोगी ?'

'सारों को क्यों ?'

'फिर अपने भूषण को बदल दोगी ?'

'मैं भूषण को भी कैसे बदल सकती हूँ। वह तो दूसरी शादी करवा ही रहा है। और मैं मर गई तो तीसरी भी करवायेगा ही।'

'तो तुम इसमें क्या कर सकती हो मोहिनी ?'

'मैं सब कुछ कर सकती हूँ। सब कुछ न सही तो अपनी इच्छा तो पूरी कर ही सकती हूँ।'

'यानि ?'

'यानि, अपने पति से भी प्रेम करूँगी और उस लड़के से भी।'

'क्या कह रही हो ? मालूम है, कहीं भेद खुल गया तो ?'

'भेद खुल गया तो क्या होगा, यही न मेरा पति मुझे मार देगा। मैं मरने को तैयार हूँ, पर किसी ऐसे आदमी से प्रेम करने को तैयार नहीं हूँ जो मेरे से दूसरी शादी करवा रहा हो।'

'पति के होते हुए दूसरे से प्रेम ?'

'हाँ, पति के होते हुए दूसरे से प्रेम करूँगी। एक ऐसे लड़के से प्रेम करूँगी जो कँवारा है। उतना ही कँवारा है जितनी मैं हूँ। उतना ही युवक, जितनी मैं युवती हूँ। उतना ही सुन्दर, जितनी मैं सुन्दरी हूँ। उतना ही प्यारा, जितनी मैं प्यारी हूँ।'

'तो फिर तुम पिता जी से कहकर उसी लड़के से शादी क्यों नहीं करवा लेती ?'

'उस लड़के से ? कला, तुम नहीं समझती। इसमें पिता जी के वचन का सवाल है। उनकी इज़्ज़त का सवाल है। वह तो कहते हैं ५०० रुपये वेतन पाता है। यह है, वह है। हम जो कर रहे हैं तुम्हारी खुशी के लिए कर रहे हैं। पर मेरे साथ क्या बीत रही है इसका उन्हें क्या पता!'

'तुम उस लड़के से सचमुच प्रेम करती हो मोहिनी ?'

'कला, क्या कह रही हो ? मैं उससे प्रेम करती नहीं हूँ, कर लिया है।'

'मोहिनी, क्या कहती हो ?' मेरे पैरों से ज़मीन निकल गई।

'हाँ, कला, कर लिया है। मैं अपनी ज़िद्द की पक्की हूँ कला ! मैंने आज तक जो सोचा है वही किया है। मैंने सोचा था कि मैं उस आदमी के पास, हाँ भूषण के पास, बिल्कुल पवित्र रूप से नहीं जाऊँगी। एक अपवित्र आदमी के पास पवित्र लड़की नहीं जा सकती। मैं तो बिल्कुल नहीं जा सकती। और इसलिए मैंने उस लड़के से प्रेम किया है। और अब मैं उतनी ही अपवित्र हूँ जितना कि भूषण।'

'मोहिनी, मुझे तुम्हारा यह ढंग बिल्कुल पसन्द नहीं आया। भारतीय नारी को ऐसा सोचना भी पाप है।'

'क्या भारतीय नारी, भारतीय नारी, चिल्ला रही हो ? मैं जो साचती हूँ वही करती हूँ।'

उस रात हमें बातें करते-करते रात के १२ बज गए। मोहिनी इसी बीच सो गई। मुझे नींद नहीं आई। मुझे तो अभी कुछ सोचना था। हाँ, अभी तुलना करनी थी। मोहिनी और कला में तुलना करनी थी। भूषण और शंकर में तुलना करनी थी। मैंने मन ही मन तुलना की। ऐसी तुलना म न ही मन होती है। रात के अँधेरे में ऐसी तुलना करना तो और भी अच्छा होता है क्योंकि यदि चेहरे पर कोई भाव आ भी जाये तो उस अँधेरे में कोई उस भाव को पहचान लेगा इसका भय भी नहीं रहता।

मैंने पहले शंकर और भूषण में तुलना की और शंकर को हर दृष्टि से भूषण से अच्छा ही पाया। और जब कला और मोहिनी की तुलना की तो भी मु झे कला ही अच्छी लगी और लगा कि कला मोहिनी से अधिक सुखी है, अधिक प्रसन्न है। और फिर सोचने लगी, मेरा शंकर इस समय क्या कर रहा होगा। १२ बजे हैं, सो गया होगा या कि मुझे

याद कर रहा होगा और सोच रहा होगा कि कब वापिस लौटेगी उसकी कला।

और यही सोचते-सोचते मुझे नींद आ गई।

दूसरे दिन मोहिनी की शादी बड़ी धूम-धाम से हुई। बारात आई, सेहरा गाया गया, शहनाइयाँ बजीं, रोशनियाँ हुईं, मण्डप सजाया गया, फेरे हुए और मोहिनी की शादी हो गई।

इससे ज़्यादा शादी पर होता ही क्या है। इतनी-सी घड़ी होती है जिसके लिए दुनियाँ मारी-मारी घूमती और सुनहरे स्वप्न बनाती और सँजाती है। फिर इस घड़ी के बाद भी सबको सुख ही मिलेगा इसका कोई आश्वासन नहीं होता।

नरक और स्वर्ग दूसरे लोक में तो हैं ही। पर इस लोक में भी नरक और स्वर्ग हैं, ऐसा मैं मानती हूँ। स्वर्ग इस धरती पर भी है और जो धरती स्वर्ग है वह ऊपर वाले स्वर्ग से अच्छा और अधिक सुन्दर है। और जब धरती का स्वर्ग मिल जाता है तो ऊपर वाले स्वर्ग की चाह जाती रहती है।

पर यह स्वर्ग केवल इने-गिने व्यक्तियों को ही तो मिलता है। वैसे तो ऊपर वाला स्वर्ग भी इने-गिने व्यक्तियों को ही मिलता है।

धरती का स्वर्ग पिछले कर्मों के अनुसार तो मिलता ही है, पर अच्छा जीवन-साथी मिलने पर भी धरती स्वर्ग बन जाती है। और अच्छा जीवन-साथी भी तो इने-गिने व्यक्तियों को मिलता है। और जिन्हें अच्छा साथी मिल जाता है, वे धरती पर ही स्वर्ग बना लेते हैं और जिन्हें अच्छा साथी नहीं मिलता उनके लिए यह धरती नरक बन जाती है और वे लोग ऊपर वाले नरक में जाने को जल्दी तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे

मानते हैं कि ऊपर वाले नरक में इतना कष्ट नहीं होगा जितना कि इस धरती पर भोग रहे हैं।

पैसे का अपने आपमें एक विशिष्ट स्थान है। पैसा दुनियाँ में सब कुछ नहीं तो सब कुछ के बाद जो कुछ है वह पैसा ही होता है, ऐसा सभी मानते हैं। और उस पैसे से ही इस धरती को कुछ लोग स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु ऐसा स्वर्ग कृत्रिम स्वर्ग कहलाता है और जो कृत्रिम होता है उसमें वास्तविक आनन्द नहीं आता।

इसलिए पैसे से बढ़कर कुछ है तो वह है जीवन में अच्छे साथी का मिल जाना। जिन्हें अपने जीवन में अच्छा जीवन-साथी मिल जाता है, अच्छे पुरुष को अच्छी स्त्री और अच्छी स्त्री को अच्छा पुरुष मिल जाता है, वे कितने सुखी होते होंगे! यह तो वे ही बता सकते हैं। मैं इसलिए भी नहीं बता सकती कि मैंने ऐसे स्वर्ग का कभी अनुभव नहीं किया है। केवल सुना है और सुनने और अनुभव करने में तो बड़ा अन्तर होता है न!

अच्छा साथी मिल जाने पर पैसे की चाह भी जाती रहती है। और उस आदमी को पैसे चाहिएँ ही क्यों जिसका साथी यह कहे—कि आप दो रोटी तो कमा ही लेते हैं। मैं आधी खा लूँगी और आप डेढ़ खा लेना।

ख़ैर, मैं अपने रास्ते से थोड़ा भटक गई हूँ। इसलिए क्षमा चाहती हूँ।

मोहिनी की शादी हो गई। भूषण को मैंने अपनी आँखों से देखा और देखा कि वह काफी सुन्दर है और मोहिनी पागल है जो इतने विरोध भाव से विवाह करवा रही है। ऐसे पति को पाकर तो कोई भी

लड़की खुश रह सकती है।

मोहिनी का विवाह हो गया। और उसके पांच दिन बाद मुझे शंकर लेने के लिए दिल्ली आ गया। शंकर कैसा आदमी है, यह बताऊँ, उस समय तक कठिन था। वैसे तो किसी भी व्यक्ति को पूर्ण रूप से जानने के लिए इतना कम समय पर्याप्त नहीं होता। किसी आदमी को पूर्ण रूप से पहचानने के लिए एक महीना या वर्ष क्या, पूरा जीवन भी कम है। और जो स्त्री कहती है कि मैंने अपने पति को या जो पुरुष कहता है कि अपनी पत्नी को पूर्ण रूप से पहचान लिया है, वे सब झूठ बोलते हैं।

यह मानती हूँ कि पुरुष अपनी पत्नी को सच्चरित्र और दूसरे की पत्नी को सुन्दर मानता है। क्योंकि जब तक वह अपनी पत्नी को सच्चरित्र नहीं मानेगा तब तक वह उसके साथ कैसे रह सकेगा और पुरुष में इतना त्याग या क्षमा-भाव कहाँ कि किसी से अपनी पत्नी की चरित्र-हीनता की बात सुनकर चुप रह सके। हाँ, स्त्री तो यह काम कर भी सकती है, पर पुरुष के बस का नहीं है।

मैंने शंकर को बहुत पहचानने का प्रयत्न किया परन्तु आज तक नहीं पहचान सकी। इतना भी नहीं जान सकी कि वह कैसा आदमी है। यह तो पता है कि बड़ा विचित्र आदमी है। मैं शंकर के साथ कोई पाँच वर्ष रही। उन पाँच वर्षों में भी शंकर को पहचान नहीं सकी। मैं ही नहीं, मेरी जगह कोई भी स्त्री क्यों न होती, वह भी यही कहती जो कि मैं कह रही हूँ।

दिल्ली से जब मैं दूसरी बार जालन्धर गई तो मेरी धारणा धीरे-

धीरे कुछ बदलती गई। वही धारणा कि शंकर शराबी नहीं है और उस दिन उसने ज़बरदस्ती पी थी।

मैं अब स्वीकार करने लगी कि वह शराबी है, पक्का शराबी है, रोज़ शराब पीता है, अपनी इच्छा से पीता है और कोई उससे ज़बरदस्ती नहीं करता। वह भले किसी के साथ ज़बरदस्ती करता हो, जैसे वह मेरे साथ भी कभी-कभी करता है।

शंकर रोज़ शराब पीकर आता। पहले तो मेरा मन हुआ कि मैं जाकर पिता जी से कह दूं कि उनका लड़का शराबी है, फिर सोचा क्या यह सब पिता जी को नहीं पता होगा। ज़रूर पता होगा।

ऐसी विकट स्थिति में कोई भी पत्नी अपना धैर्य खो सकती है और आज की नारी तो कभी भी ऐसे आदमी का साथ देने को तैयार नहीं हो सकती। मोहिनी तो कभी ऐसे आदमी के साथ एक पल भी नहीं रह सकती। फिर सोचती, क्या इसे छोड़ देना चाहिए और कचहरी के कटहरे में जाकर कह देना चाहिए कि मैं अपने पति को छोड़ने को तैयार हूँ क्योंकि वह शराबी है; और फिर मैं आज ऐसे पति को छोड़ भी तो सकती हूँ, एक आवेदन-पत्र से छोड़ सकती हूँ, कानूनन छोड़ सकती हूँ।

फिर विचार आता, नहीं, यही मेरा पति है, यही मेरा स्वामी है, मुझे सारा जीवन इसके साथ ही रहना होगा और ऐसा विचार भी मन में लाना पाप हो सकता है।

मैंने जाना कि शंकर का स्वभाव बड़ा विचित्र है। जब ठीक शाम के ८ बजते हैं तो उसमें परिवर्तन आना शुरू हो जाता है और उसकी आँखों की बनावट और बातों में बेतुकापन स्पष्ट बता देता है कि शंकर

के शराब पीने का समय हो गया है।

हाँ, ठीक रात के ८ बजे शंकर का शराब पीने का समय था। वह आठ बजे नहीं रुक सकता था। कितना भी ज़रूरी काम क्यों न हो, वह आठ बजे कहीं चला जाता—शराबघर में या किसी ऐसे ठिकाने में जहाँ उसकी अतृप्त आँखों को तृप्ति और अशान्त मन को शान्ति मिलती है।

और मैं फिर सोचती, पर शंकर ऐसा क्यों करता है ? क्या कोई ऐसी परेशानी है जो शराब से दूर हो जाती है ? फिर शंकर कई बार शराब के नशे में कहता भी तो है कि यह अपनी खुशी के लिए थोड़े ही पीता हूँ, यह तो मैं केवल ग़म ग़लत करने के लिए पीता हूँ।

'ग़म-ग़लत !' शंकर को कैसा ग़म है। क्या इसका किसी और से प्रेम है या कि किसी और से प्रेम था और मुझसे इसके पिता जी ने ज़बरदस्ती विवाह कर दिया है ? और इसको अब भी उस लड़की की याद आती है, जिसके लिए यह शराब पीता है या कि उसको भुलाने के लिए शराब पीता है।

फिर सोचती कि यदि उसका किसी लड़की से प्रेम है भी तो फिर रात के आठ बजे ही क्यों एकदम उसमें परिवर्तन आ जाता है ? प्रेम में बंधन तो नहीं होता और न ही कोई इस प्रकार की सीमा-रेखा ही होती है। फिर सोचती कि नहीं, यह भी तो हो सकता है कि शंकर और वह लड़की, जिसको शंकर बहुत याद करता है और मुझे उसका नाम पता नहीं, ठीक आठ बजे ही कहीं मिलते हों और अब उस मधुर मिलन की स्मृति को यह भुला देना चाहता हो। यानि शराब पी वह आठ बजे से दस बजे तक का समय बिता देना चाहता हो।

फिर सोचती कि नहीं मुझमें ही कोई कमी है या कि मैं इतनी

सुन्दर नहीं हूँ और शंकर मेरे से खुश नहीं है यानि वह इस विवाहित जीवन से प्रसन्न नहीं है। यदि ऐसा है, तो शंकर मुझे साफ-साफ क्यों नहीं बता देता ?

पर ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए ? पति छोड़ देना चाहिए और कचहरी के कटहरे में खड़े होकर कह देना चाहिए कि मैं अपने पति से सन्तुष्ट नहीं हूँ, क्योंकि वह शराबी है, और मैं उसे छोड़ना चाहती हूँ। पर यह तो मोहिनी ही कर सकती है, कला नहीं कर सकती। मैं तो शंकर के पास ही रहूँगी और धीरे-धीरे उसकी यह आदत बदल दूँगी। इतना तो सामर्थ्य होनी ही चाहिए मुझमें।

पर शंकर का स्वभाव बड़ा विचित्र था। उसके भीतर वाले मन को पहचान सकना बड़ा कठिन था। मेरे लिए तो और भी कठिन था।

भीतर वाले मन को पहचान पाना बड़ा कठिन होता है, इतना कठिन कि इसे असम्भव मान लेना ठीक रहेगा। किसके भीतर क्या है, यह पहचान सकने का प्रयत्न ही व्यर्थ है।

हर आदमी के दो रूप होते हैं, एक बाहरी रूप और दूसरा भीतरी रूप। भीतर वाला रूप ही अधिक प्रभावशाली और वास्तविक होता है। आदमी बाहर तो केवल ढाँचा मात्र है, जो नकली है, यानि बनावटी है और जो बनावटी नहीं, वह भीतर वाला रूप ही है।

मैंने पाया कि शंकर मन का बुरा नहीं है। वह केवल बाहर से बुरा है। भीतर से अच्छा है। लोग ऐसा मानते भी हैं कि जो भीतर से अच्छा होता है, यानि भीतर से कोमल होता है और बाहर से कठोर होता है, वही आदमी अच्छा होता है। उससे तो वह ज़रूर अच्छा होता है जो भीतर से कठोर और बाहर से कोमल होता है।

तो इसका अर्थ यही निकला कि शंकर अच्छा है। बहुत अच्छा। वह भीतर से बुरा नहीं है, बुरा केवल बाहर से है और अपनी आदत से मजबूर है।

शंकर आदत से मजबूर है। आदत से मजबूर कौन नहीं होता। सभी होते हैं और शंकर भी यदि आदत से मजबूर है तो इसमें बुरा क्या है? पर यह आदत अच्छी नहीं, इसलिए मुझे इसकी यह आदत बदलनी होगी। एकदम नहीं तो धीरे-धीरे।

शंकर की आदत ठीक आठ बजे शराब पीने की थी। ठीक आठ बजे वह बिना शराब पिए नहीं रह सकता था।

और मैंने मन ही मन यह निश्चय किया कि एक दिन मैं शंकर को ८ से १० बजे तक उठने नहीं दूंगी। यानि बिल्कुल उठने ही नहीं दूंगी। मैं भी आखिर एक स्त्री हूँ, एक सुन्दर स्त्री, जो चाहे तो संन्यासी का तप भंग कर दे। तो क्या वह एक दिन शंकर को अपने मोह-जाल में नहीं बाँध सकती?

और मेरा ऐसा चाहना बुरा नहीं था। एक दिन, हाँ, उस दिन मैं सबसे ज़्यादा खुश थी जब मैंने शंकर को अपने पास बिठाए रखा। यानि मैं जितनी सुन्दर थी उससे और सुन्दर बनी। थोड़ी देर के लिए मैंने वह लज्जा, जो नारी का आभूषण होता है, उतार दिया और शंकर से प्रेम करने लगी। और मैंने पाया कि शंकर उस रात कहीं नहीं गया। यानि शराब पीने भी नहीं।

पर एक दिन की इस घटना से क्या होता है! क्या एक दिन में ही उसकी आदत बदल जायेगी, ऐसा तो मैं सोच भी नहीं सकती थी। तो फिर मैं क्या करूँ? क्या उस दिन वाली बात, शंकर को अपने मोह-

जाल में फँसाने वाली बात, रोज़ करूँ ? रोज़ अपना लज्जा का आभूषण उतारकर फेंक दूं ? मैं ऐसा रोज़ तो नहीं कर सकती थी। रोज़ कर भी सकती, पर मन में फिर एक प्रकार का भय आ जाता कि मेरे द्वारा रोज़-रोज़ ऐसा किया जाना क्या शंकर को अच्छा लगेगा ? क्या कहीं शंकर यह तो नहीं सोचने लग जायेगा कि मैं चरित्रहीन हूँ, यानि लज्जाहीन हूँ, इसलिए अच्छी नारी नहीं हूँ ?

वह ऐसा ज़रूर सोचेगा, वह पुरुष है। पुरुष, जिसे अपने पुरुषत्व पर अभिमान होता है, और जो सोचता है 'मैं पुरुष हूँ इसलिए बड़ा हूँ, यानि पत्नी का स्वामी हूं, उसका मालिक हूँ उसका सब कुछ हूँ।'

और इसी भय से मैंने उस दिन वाली बात फिर कभी नहीं दोहराई।

शंकर फिर शराब पीने जाता। रोज़ जाता। कई बार तो ठीक आठ बजे ही मुझसे कहता—

'कला, कुछ पैसे हैं ?'

'नहीं,'

'झूठ बोलती हो।'

'नहीं स्वामी, ठीक कहती हूँ, मेरे पास कोई पैसा नहीं है। आपको किस लिए चाहिएँ ?'

'मुझे शराब पीनी है।'

मुझे ऐसी स्थिति की तालाश भी थी। मैं मानती थी कि आदमी प्यार से सीख सकता है, विरोध से तो कभी नहीं सीख सकता और कुछ ऐसे मार्मिक क्षण होते हैं जो आदमी की आँखें खोल देते हैं और ऐसा ही मार्मिक क्षण आ भी गया।

तो मैंने बड़े नम्र स्वर से कहा—'स्वामी, मेरे पास पैसे तो नहीं हैं और अगर आपको शराब पीनी ही है और ज़रूर पीनी है तो मैं आपको अपनी चूड़ियाँ उतारकर दे सकती हूँ। आप इन्हें बेचकर शराब पी लीजिएगा। इससे ज़्यादा मैं क्या कर सकती हूँ!'

और फिर मैं रुक गई। हाँ, शंकर का उत्तर सुनने को रुक गई कि शंकर कहेगा—'कला, तुम धन्य हो, मुझे तुम्हारी चूड़ियाँ नहीं चाहिएँ।'

पर नहीं, जैसा सोचा था वैसा हुआ नहीं और शंकर ने बिना कुछ कहे, बिना एक बार भी यह कहे—'कला, रहने दो।' मेरी चूड़ियाँ ले लीं। बल्कि चूड़ियाँ उतारने में उसने मेरी सहायता भी की और चूड़ियाँ लेकर वह एकदम सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

शंकर के चले जाने के बाद मैं बहुत रोई और रोते-राते मुझे लगा कि रोना अच्छा नहीं है। यदि रोती रही तो जीवनभर रोती रहोगी। अब तुम्हें ही कुछ करना होगा। शंकर की आदत को रोकना ही होगा।

अब कला में थोड़ा परिवर्तन आ गया। अब कला ने देख लिया कि जब शंकर की आदत प्रेम से नहीं बदल सकी तो अब वह उसे कहेगी—शंकर से कहेगी और विरोध प्रकट करेगी और अब शंकर उससे पैसे माँगेगा भी तो वह पैसे नहीं देगी, अपने आभूषण भी नहीं देगी, कभी नहीं देगी और कुछ नहीं देगी। वह अपने पति को शराब पिलाने के लिए अपने आभूषण नहीं दे सकती।

पर इसका परिणाम भी अच्छा नहीं निकला। शंकर रोज़ शराब पीकर घर आता। मैं पूछती—'आप शराब क्यों पीते हैं? मैं ऐसे आदमी के साथ नहीं रह सकती जो शराबी हो, मैं अपने मायके चली

जाऊँगी। और अपने भाई से, अपनी माँ से जाकर कहूँगी कि आपने जिस आदमी को मेरे मत्थे मढ़ा है वह शराबी है।'

इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे रोज़ मार पड़ने लगी। शंकर मुझसे पैसे माँगता। मैं इन्कार कर देती। वह कोई आभूषण उतार देने को कहता। मैं फिर इन्कार कर देती। वह मुझे मारता, काफी ज़ोर-ज़ोर से मारता।

पर वह शराब ज़रूर पीता। न जाने कहाँ से पैसों का प्रबन्ध कर लेता था। शंकर शराब पीकर घर आता। मैं विरोध करती और वह मुझे मारता।

मैं यह मार चुपचाप सह लेने का प्रयत्न करती। मैं चाहती कि बिल्कुल ही न रोऊँ। भूल से भी मेरे मुँह से कोई चीख न निकल जाये, पर पिता जी मेरी चीख सुनकर नहीं, शंकर के हाथों की आवाज़ सुनकर ऊपर आ जाते। हाँ, शंकर के हाथ, जो मेरे मुँह पर या शरीर के किसी भी अंग पर पड़ते तो एक प्रकार की आवाज़ उत्पन्न करते। और वह आवाज़ बहुत ज़ोर की न सही, इतने ज़ोर की तो होती ही कि नीचे बैठे पिता जी को पता चल जाता कि उनका बेटा, इकलौता बेटा, जो उन्होंने बड़े लाड़ों से पाला है, उनकी बहू को पीट रहा है, मार रहा है। किसी ऐसे निर्जीव अथवा चेतनाहीन प्राणी को मार रहा है जो जड़ है और जिसे कोई जितना चाहे मार ले उसके मुँह से कोई ध्वनि नहीं निकलेगी। और जब मारने वाला शान्त हो जाए या फिर उसका हाथ थक जाए और मारना चाहने पर भी उसका हाथ न उठे, फिर मारने वाले को अपने हाथ पर ही गुस्सा आ जाये कि कितना बे-आज्ञाकारी हो गया है उसका अपना हाथ, तब वह रुक जाये और जाकर कहीं बैठ

जाए बिना यह सोचे विचारे कि उसने जिसको इतना मारा है वह जिन्दा है या मर गया है।

मुझे मार पड़ती देखकर पिता जी मुझे छुड़ाते। मुझे गले लगाते। पर उनका शंकर शराब के नशे में चूर मुझे पिता के हाथों से छीन-छीन कर मारता। कई बार मुझे छुड़ाते-छुड़ाते शंकर के कुछ हाथ पिता जी के शरीर पर भी पड़ जाते।

कई बार पिता जी शंकर को भी मारते। पर इस पर मैं विरोध करती थी, मैं अपने शंकर को किसी से मार पड़ते नहीं देख सकती थी, उसके पिता से भी नहीं।

ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए। क्या पिता जी से कहकर अपने मायके चले जाना चाहिए। यानि दिल्ली चला जाना चाहिए, अपनी माँ के पास चले जाना चाहिए और माँ को कहना चाहिए—'देखो माँ, मैं तुम्हारी कला हूँ, वही कला जिसको तुमने इतने लाड़ और प्यार से पाला है। मैं आज अपनी ससुराल से लौट आई हूँ। अपने-आप लौट आई हूँ। मुझे राजेश लेने भी नहीं गया। तुम तो कहती थीं कि मुझे अपने भाइयों के पास आने की फुरसत भी नहीं होगी। पर नहीं, माँ, अगर तुम चाहो तो मैं सदा के लिये यहाँ रह जाऊँ। मैं तो तुम लोगों से प्यार करती हूँ। हर लड़की ऐसी नहीं होती माँ!' और फिर मैं माँ से कहूँ—

'देखो माँ, मैं तुम्हारे लिए कुछ लाई हूँ।'

फिर माँ भी बीच में ही बोल उठेगी—'कला, मैं तुम्हारे घर की कोई चीज़ नहीं ले सकती। लड़कियाँ तो पराया धन होती हैं।'

और फिर मैं साफ-साफ माँ से कह दूँ कि माँ, मैं तुम्हें देने के लिए

कुछ नहीं लाई हूँ। केवल दिखाने के लिए लाई हूँ। यह देखो मेरी टाँगें, यह देखो मेरी पीठ, यह मेरी बाज़ू। इन पर कुछ निशान हैं न माँ, ये तुम्हें बता देंगे कि तुम्हारी बेटी कितनी खुश है। कितनी खुश! उसे फुरसत ही नहीं है अपने राजेश से और केवल से मिलने की।'

और फिर मैं अपनी ही सोची हुई बात का स्वयं ही खण्डन कर देती और सोचती कि इससे क्या होगा। राजेश को गुस्सा आ जायेगा और वह मुझे कभी भी शंकर के पास जालन्धर नहीं भेजेगा। और जब शंकर मुझे लेने आयेगा तो राजेश शंकर को घर से निकाल देगा। यह भी हो सकता कि वह शंकर पर हाथ उठा बैठे। पर नहीं, राजेश ऐसा नहीं है।

फिर सोचती, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। मैं शंकर के पास ही रहूँगी। हाँ, शंकर के पास ही। रोज़ मार खाऊँगी, एक दिन भी नहीं चिल्लाऊँगी और फिर जीवन में कभी तो वह दिन आयेगा जब शंकर मुझे मारते-मारते थक जायेगा और कहेगा—'कला, मुझे माफ कर दो। मेरे से भूल हो गयी है। तुम देवी हो और मैं राक्षस हूँ जो अपनी पत्नी पर हाथ उठाता हूँ। एक देवी की प्रतिमा पर हाथ उठाता हूँ। मैं नीच हूँ, अधम हूँ।'

और उस दिन मैं अपने शंकर को गले लगा लूंगी। वह दिन आयेगा, ऐसा मुझे विश्वास था कि ऐसा दिन आयेगा अवश्य। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, पर आयेगा अवश्य। एक न एक दिन तो आयेगा ही।

और जब मैं इतने कष्ट सह रही हूँ तो सुख भी तो मैं ही भोगूंगी। और कष्ट सहने के बाद जो सुख मिलता है, वह सुख नहीं, आनन्द होता है, ऐसा आनन्द जो हर किसी को नहीं मिलता।

छः

मैंने किसी तरह रो-पीटकर तीन वर्ष शंकर के साथ काटे। पर शंकर में कोई सुधार नहीं हुआ। शंकर की आदतें दिन-प्रति-दिन बिगड़ती ही जा रही थीं। शंकर रोज़ शराब पीता। पहले से ज्यादा पीता। शंकर यहीं तक सीमित रहता तो भी कोई बात थी। वह कुछ और आगे बढ़ गया था। उसकी शर्म जाती रही थी। वह अब अपने पिता से भी नहीं डरता था। अपनी बहिन रानी से भी नहीं। फिर मेरी तो हस्ती ही क्या थी।

शंकर एक स्त्री को घर में लाने लग गया। पिता जी ने मना किया। काफी डाँटा-फटकारा भी। पर शंकर ने एक न सुनी। मैं जितनी दुःखी थी, पिता जी उससे भी ज्यादा दुःखी थे। उनका इकलौता लड़का घर में एक स्त्री लाने लग गया। कोई दूसरी स्त्री। वह स्त्री कैसी है, यह पिता जी ने अनुमान लगा ही लिया था।

पिता जी शंकर का विरोध करते, पर शंकर एक न सुनता। पिता जी रोते, कई बार अकेले और कई बार मुझे साथ बिठाकर। और कहते—'बेटी कला, तुम देवी हो। अब तुम ही बताओ मैं क्या करूँ! क्या आत्महत्या कर लूँ? ऐसी सन्तान से तो सन्तान का न होना ही अच्छा है। रानी का क्या होगा? इस मूर्ख को केवल तुम ही समझा सकती हो कला!'

फिर मैं कहती—'पिता जी, इतने दुःखी मत होइए। भगवान् सब

ठीक करेगा।'

और एक दिन पिता जी ने मुझसे कहा—'बेटी, मेरी एक बात मानोगी ?'

'हाँ, पिता जी बताइए।'

'तुम रानी को साथ लेकर कुछ दिनों के लिए दिल्ली चली जाओ। अब रानी का इस मकान में रहना ठीक नहीं है।'

मैंने कहा—'पिता जी, जैसी आपकी आज्ञा।'

पिता जी मुझे और रानी को लेकर खुद दिल्ली चल दिये। झोली फैलाकर इतनी भीख उन्होंने और माँग ली थी कि मैं यह सब, जो मेरे साथ होता रहा है, किसी से नहीं बताऊँगी। माँ से भी नहीं, राजेश से भी नहीं, केवल से भी नहीं।

मैं बिना किसी पूर्वसूचना के ही दिल्ली आई थी इसलिए सब मुझे देखते ही हैरान हो गए।

पिता जी ने राजेश से कहा—'देखो राजेश,कला को मिलाने लाया हूँ। तुम भी सोचोगे कहाँ से आ गया।'

'नहीं पिता जी, आप क्या कह रहे हैं ?'

'हाँ राजेश, मुझे दिल्ली कुछ कपड़ा खरीदने आना था। सोचा, कला और रानी को भी साथ लेता चलूं। मिल आएँगी।'

राजेश ने कहा—'पिता जी, आप कुछ दिन रहेंगे न ?'

'नहीं बेटा, मैं तो आज ही चला जाऊँगा। हाँ, कला और रानी कुछ दिन यहाँ रहेंगी।'

इतने में माँ जी ने धीरे से शंकर के पिता जी से कहा—

'बधाई हो।'

'क्या कह रही हो कला की माँ ! कैसी बधाई ?'

'राजेश की बात-चीत हो रही है। बस, कला और राजेश जाकर लड़की देख आयें तो तै ही समझिये।'

पिता जी ने कहा—'वाह-वाह, तब तो मिठाई खाने के दिन आ गये।'

पिता जी थोड़ी देर बैठे रहे और फिर छुट्टी लेकर यहाँ से चले गये। जाते समय कह गए—'मुझे अभी कपड़ा खरीदना है, देर हो गई तो सीधा जालन्धर ही चला जाऊँगा। हाँ, समय मिला तो आऊँगा।'

पर मैं तो खुशी से पागल हो रही थी। माँ से बार-बार पूछती—'माँ, भाभी कैसी है ?'

माँ कहती—'बहुत सुन्दर है तुम्हारी भाभी।'

'तो माँ, हमारे राजेश भैया क्या किसी से कम हैं। कहाँ रहती हैं हमारी भाभी ?'

'यहीं दिल्ली, सीताराम बाज़ार में रहती हैं।'

'कब चलना है भाभी को देखने ?'

'इतनी अधीर न हो कला ! एक-दो दिन में ही चलेंगे। तुम तो कुछ दिन अभी यहीं रहोगी न ! कौन-सी आज ही चली जाओगी।'

मैं तो सब भूल चुकी थी। यह भी भूल गई थी कि मेरी शादी एक शराबी से हुई है जो मुझे मारता है, पीटता है और एक पराई स्त्री को मेरे सामने मेरे घर ले आता है।

मैं तो केवल अपनी भाभी के बारे में सोच रही थी। हाँ, अपनी सुंदर भाभी के बारे में।

फिर मैंने पूछा—'माँ, मोहिनी का क्या हाल है ?'

'मोहिनी आई हुई है, जाओ ऊपर जाकर मिल आओ।'

माँ से मोहिनी का आना सुनते ही मैं भागकर ऊपर मोहिनी के पास गई। पहले हम दोनों एक-दूसरे के गले लग गईं, फिर मैंने उसका नया रूप देखा तो उससे कहा—

'आखिर तुमने अपनी ज़िद्द पूरी कर ही ली न!'

'मैं मोहिनी हूँ कला, जो सोचती हूँ, वही कर लेती हूँ।'

'कब कटवाये हैं?'

'यही कोई छः महीने हुए हैं।'

'तो भूषण ने कुछ नहीं कहा?'

'उसने क्या कहना था।'

'आखिर कुछ तो कहा होगा?'

'हाँ, कहता था कि हमारे परिवार में पहले तो किसी स्त्री ने बाल नहीं कटवाए हैं, जब तुम्हारी इतनी ही इच्छा है तो कटवा लो।'

मैंने फिर कहा—'तो इसका मतलब हुआ कि भूषण ने अनमने भाव से तुम्हें बाल कटवाने की अनुमति दी है!'

'अनमने भाव से दी हो या मन से दी हो, पर मैंने अपनी एक इच्छा तो पूरी कर ली—सबसे प्रबल इच्छा।'

'अच्छा, तो सुनाओ तुम्हें भूषण कैसा लगा?'

'अच्छा ही है।'

'खुश हो न?'

'हाँ, खुश ही हूँ। यानि बड़े नम्र स्वभाव का आदमी है। जो कहती हूँ वही ला देता है।'

मैं बीच में ही बोल उठी—'प्रेम भी करता है?'

'इस बात का उत्तर मैं इतनी जल्दी कैसे दे सकती हूँ? दूसरी शादी

है। मेरे से प्रेम क्यों न करेगा ? वैसे शरीफ लगता है। कोई बुरी आदत उसमें नहीं है। सिगरेट पीना तो दूर रहा, पान तक नहीं खाता।'

और मेरे मुँह से अचानक निकल गया—'शराब पीता है ?'

और मोहिनी ने कहा—'भगवान् का नाम लो, जो सिगरेट नहीं पीता वह शराब क्या पीयेगा।'

फिर एकाएक मुझे लगा कि मुझे यह प्रश्न नहीं करना चाहिए था। पर यह मेरे मुँह से ही निकल गया और फिर तुलना भी तो करनी थी—अपनी सखी के पति में और अपने पति में—और मैंने मन ही मन तुलना की और प्रयत्न यही किया कि उस तुलना का कोई भाव चेहरे पर न आये। मैंने मन ही मन सोचा कि मोहिनी कला से ज़्यादा खुश है। उसका पति सुन्दर है, मोहिनी से प्रेम करता है, शरीफ भी है, पान तक नहीं खाता, शराबी भी नहीं है, और किसी दूसरी स्त्री को अपनी पत्नी के सामने घर भी नहीं लाता।

यही सोचते-सोचते मेरे मुँह से निकल गया—'मोहिनी, भूषण तुम्हें मारता तो नहीं है ?'

यह कहकर फिर मैं थोड़ा डर गई। डर इसलिए गई कि कहीं मोहिनी इस प्रश्न से यह अनुमान न लगा ले कि शंकर मुझे मारता है। और यदि एक बार भी मोहिनी के मन में इस प्रकार का कोई सन्देह हो गया तो उस सन्देह को विश्वास में बदलते ज़रा भी देर नहीं लगेगी। और कहीं उसने मेरी बाँह, या मेरी पीठ देखनी चाही तो ? हालाँकि वह देखेगी नहीं, अगर वह देखना भी चाहे तो देख सकती है। मेरी सहेली है, गहरी सहेली है। फिर इतना तो एक सहेली को अधिकार होता ही है कि वह अपनी सखी से कहे कि अपनी बाँह दिखाओ

या कि अपनी टाँगें दिखाओ।

पर मोहिनी ने ऐसा कुछ नहीं किया और न ही वह मेरे चेहरे की घबराहट से कुछ अनुमान ही लगा सकी।

मोहिनी ने तुरन्त कहा—'कला, भूषण और मुझे मारे! क्या बात कर रही हो! तुम्हें मैंने कितनी बार कहा है कि आज वह ज़माना नहीं रहा जब आदमी औरत को मारे या पीटे या कि ज़हर देकर उसे जान से भी मार दे।'

मैंने कहा—'मोहिनी, नहीं, नहीं, यह तो तुम बढ़ा-चढ़ाकर बात कर रही हो। कौन पति अपनी पत्नी को ज़हर देकर मारना चाहेगा?'

मोहिनी कहने लगी—'कला, तुम भी कितनी भोली हो! आदमी अपनी पत्नी को ज़हर देता है, ऐसा विष देता है, जो एकदम नहीं, धीरे-धीरे असर करता है, और इस पर भी तड़पन का पता नहीं चलता।'

मुझे एकदम शंकर का वह रूप याद आया जब उसने मुझे मारा था। इतना मारा था कि रुकने का नाम नहीं लेता था और जब वह रुका भी था तो उसका कारण यह नहीं था कि उसने सोचा हो कि काफी हो चुकी है। उसका कारण था, उसके अपने हाथ का थक जाना। और अगर उसका हाथ न थका होता तो वह मुझे और मारता, और मारता और फिर कौन जाने···अगर पिता जी न आये होते तो क्या यह नहीं हो सकता था कि शंकर कोई लोहे की भारी वस्तु मेरे पर फेंक देता, और वह मुझे लग जाती, सिर पर लग जाती और मैं मर जाती।

और मैं सोचने लगी—'मर जाती तो कितना अच्छा होता!'

इतने में मोहिनी बोली—'कला, तुम किस सोच में पड़ गई हो ?'

मैंने कहा—'किसी सोच में नहीं।'

'तुम भी बड़ी चालाक हो कला !'

'मैं और चालाक, मोहिनी, क्या कह रही हो ?'

'हां, चालाक नहीं तो और क्या ? मुझसे सब बातें पूछ ली हैं और अपने शंकर के बारे में कुछ नहीं बताया। बताओ, तुम्हारा शंकर कैसा है ?'

'बहुत अच्छा है।' एकदम मेरे मुंह से निकल गया जैसे मैं पहले से ही तैयार बैठी थी कि कोई मुझसे मेरे शंकर के बारे में पूछे और मैं झट कह दूं 'वह बड़ा अच्छा है।'

फिर मुझे लगा कि मोहिनी मुझसे शंकर के बारे में अभी कई और सवाल करेगी और फिर जाने-अनजाने कोई गलत जवाब निकल गया—यानि सच्चा जवाब—कि शंकर तो शराबी है, और मुझे मारता है तो मैं कहीं पकड़ी न जाऊँ। यह डर ठीक ऐसा ही डर था जो एक गवाह को होता है, जो कचहरी के कटहरे में खड़ा होकर गीता पर हाथ रखकर कहता है—'मैं जो कुछ कहूँगा सच-सच कहूँगा' और यह कहते-कहते उसके चेहरे के भाव बदल जाते हैं। और अभ्यस्त लोग, हां, जो चेहरे को भाँप लेने के ज्ञान को जानते हैं और चेहरे से मन के भाव का अनुमान लगा लेते हैं, झट पहचान लेते हैं कि वह गवाह गीता पर हाथ रखकर भी जो कुछ कहेगा झूठ ही कहेगा।

और कहीं मोहिनी भी मुझे न पहचान ले कि मैं जो कुछ कह रही हूँ, झूठ कह रही हूँ। बिल्कुल झूठ कह रही हूँ, बिल्कुल गलत कह रही

हूँ। इसी भय को हटाने के लिए मैंने मोहिनी से पूछा—'तो उस लड़के का क्या हाल है ?'

'किस लड़के का ?'

'वही, जिससे तुम हृदय से प्यार करती थी ?'

और मोहिनी ने गम्भीर होकर कहा—'क्या बताऊँ कला, मेरे में तो लगता है कुछ परिवर्तन आ गया है। क्या विवाह हो जाने के बाद हर लड़की में परिवर्तन आ जाता है ? मैं तो मन ही मन कई बार सोचती हूँ कि मैंने अपने केश छोटे करवाकर भी अच्छा नहीं किया। यह परिवर्तन क्यों आ जाता है, इसका तो मुझे पता नहीं। परन्तु मेरे में जो परिवर्तन आया है उसका सारा श्रेय मैं भूषण को देती हूँ। भूषण बहुत अच्छा है, मेरी बात का कभी खण्डन नहीं करता। वह नारी को देवी मानता है।'

मोहिनी ने फिर कहा—'कला, सारे आदमी अच्छे नहीं होते, जैसे कि सब लड़कियाँ अच्छी नहीं होतीं। एक तुम हो, एक मैं हूँ। तुम देवी हो तो मैं बड़े चंचल स्वभाव वाली—तितली ही समझ लो मुझे ! मुझे तो तुमसे बहुत शिक्षा मिलती है।'

मुझे लगा कि मोहिनी बदल गई है या कि भूषण देवता है।

और मोहिनी कहने लगी—'कला, सच तो यह है कि मैं अब उतनी सुन्दर नहीं लगती हूँ जितनी मैं पहले थी।'

मैंने मोहिनी से कहा—'मोहिनी, आज मैं बड़ी खुश हूँ। तुम्हारे में इस प्रकार का परिवर्तन देखकर तो मैं और भी ज़्यादा खुश हो गई हूँ।'

और मोहिनी कहने लगी—'भूषण सचमुच देवता है, जिसने दूसरा

विवाह करवाया तो स्वीकार करता है कि उसमें कोई कमी है जो मेरे में नहीं; या कि मैं देवी हूँ और वह मानव है। हालाँकि मैं देवी नहीं हूँ कला, यह तो तुम जानती ही हो।'

'अच्छा मोहिनी, फिर आऊँगी' कहकर मैं चुपचाप नीचे अपनी माँ के पास चली गई।

× × ×

तीसरे दिन माँ के साथ मैं और रानी भाभी देखने गये। भाभी मुझे अच्छी लगी और रानी ने कहा—'गोमती है तो सुन्दर और फिर बी० ए० तक पढ़ी भी हुई है। अच्छी जोड़ी है।'

रानी ने शायद मुझे बिना बताए शंकर को चिट्ठी लिख दी थी और उसमें यह भी लिख दिया था कि भाभी तुम्हें बहुत याद करती है।

शंकर मुझे लेने के लिए एक बार फिर दिल्ली आया। आँखें वैसे ही नीची किये हुए जैसे कोई अपराध हो गया हो और उस अपराध के लिये आज वह क्षमा माँग रहा हो। बोलकर नहीं तो मौन रहकर ही सही।

शंकर ने राजेश को बधाई दी और कहा—'राजेश, अब शादी पर कब बुला रहे हो?'

राजेश ने कहा—'अभी एक वर्ष तो लग ही जाएगा।'

'अच्छा तो फिर हम तुम्हारी शादी पर ही आयेंगे।' कहकर शंकर मुझे और रानी को साथ लेकर जालन्धर की गाड़ी में बैठ गया।

मैं जब गाड़ी में बैठी तो सोचने लगी—मैंने शंकर की किसी भी हरकत का माँ से या राजेश भैया से ज़िक्र नहीं किया तो अच्छा ही किया है। यदि बता भी देती तो भी क्या हो जाता! थोड़ा तनाव

बढ़ता ही, कम होने की तो बिल्कुल कोई सम्भावना नहीं थी।

दो दिन शंकर मेरे से नहीं बोला। लेकिन आठ बजे शराब पीने ज़रूर चला जाता।

क्या करूँ और क्या न करूँ यही सोचते-सोचते मेरे जीवन के दिन कटने लगे।

एक-एक दिन का हिसाब तो मेरे पास नहीं है। इसलिए यही मान लीजिए कि शायद ही कोई ऐसा दिन हुआ हो जब शंकर ने न पी हो। शंकर रोज़ शराब पीता।

अब तक इतना मैं और जान गई थी कि मुझे मार खानी हो, हाँ, शंकर से मार खानी हो तो मुझे क्या करना चाहिए या कि मार नहीं खानी हो तो क्या करना चाहिए और मैं अधिकतर वही काम करती जिसमें मुझे मार न पड़े। यानि चुपचाप जब शंकर किसी स्त्री को, स्त्री नहीं, वेश्या को अपने साथ लाता तो मैं चुपचाप अपने कमरे में चली जाती। भगवान् से प्रार्थना करती और कहती—'भगवान्, अब तू ही इसको समझाने वाला है। मैं तो थक गई हूँ, इसीलिए तुम्हारी शरण आई हूँ। मेरे शंकर की मति ठीक कर दो भगवान्!'

और कई बार पिता जी मेरे कमरे में आकर कह जाते—'बेटी, तुम देवी हो। मुझे तो केवल तुम पर ही भरोसा है कि केवल तुम ही शंकर को सुधार सकती हो। कभी उसे अकल आयेगी।'

पर जिसे नहीं सुधरना होता, वह नहीं सुधरता। और शंकर भी नहीं सुधरा।

और एक दिन—वह दिन मुझे अभी तक याद है, और मरते दम तक याद रहेगा, क्योंकि वह दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन है, किसी के

लिए हो या न हो, मेरे लिए तो बड़ा महत्त्वपूर्ण है—रात के बारह बजे थे। एक टाँगा आकर हमारे घर के बाहर खड़ा हो गया, और ज़ोर ज़ोर से 'कोई है !' 'कोई है !' की आवाज़ें लगाने लगा। मैंने ऊपर से खिड़की से देखा। उस टाँगे में मेरा शंकर बैठा था, बेहोश शकर। मैं जाऊँ या न जाऊँ की दुविधा में पड़ गई और फिर सोचा, अगर आस-पड़ोस वालों ने देख लिया तो उनके लिए तो मेला हो जायेगा। हाँ, उन्हें तो दिनभर समय काटने की सामग्री मिल जायेगी।

और मैं हिम्मत करके नीचे गई। इतने में पिता जी भी पहुँच गये थे। पिता जी ने टाँगे वाले को पैसे दिये और शंकर को उठाकर ऊपर कमरे में ले आये। शंकर होश में नहीं था, फिर भी पिता जी के कंधे पर हाथ रखकर वह सीढ़ियाँ खुद चढ़ रहा था।

पिता जी शंकर को ऊपर छोड़कर नीचे जाने लगे और मुझसे कहने लगे—'कला, बेटी, तुम भी नीचे मेरे साथ ही चली आओ।'

मैंने कहा—'नहीं पिता जी, आप चलिए, मैं अभी आती हूँ।'

मैं शंकर के पास बैठ गई। और धीरे-धीरे अपना हाथ शंकर के सिर पर फेरने लगी। मैं रोती ही जा रही थी। ऐसी स्थिति में रोती न तो हँसती ? पति पास बेहोश था। और मैं बैठी रो रही थी और मन ही मन भगवान् से कह रही थी कि यह शंकर...

इतने में मेरी आँसू की दो बूंदें शंकर के चेहरे पर गिर गईं। वह उठने लगा और मैंने उसके उठने में थोड़ी सहायता की। शंकर उठकर बैठ गया। फिर उसने अपनी पैण्ट की जेब में से बोतल निकाली। फिर उसका ढक्कन खोला। शंकर और शराब पीना चाहता था। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि मैं इसे अब और शराब नहीं पीने दूंगी।

शंकर ने ढक्कन खोलकर बोतल मुँह से लगानी चाही और मैंने वह बोतल छीन लेनी चाही। शंकर गुस्से से तिलमिला उठा।

'मेरी बोतल इधर लाओ।'

'मैं तुम्हें बोतल नहीं दूंगी।'

'मैं कहता हूँ बोतल दे दो!'

'मैं नहीं दूंगी।'

'नहीं दोगी?'

'हाँ, नहीं दूंगी।'

और इतने में शंकर चारपाई से उठ पड़ा और मेरी ओर लपका। किसी तरह शंकर के हाथ मेरे बालों तक पहुँच गये।

'मैं बोतल नहीं दूंगी।'

उसने मेरे बालों को खींचा, फिर ज़ोर से खींचा, फिर मुझे धरती पर गिरा दिया और फिर मेरे बालों को पकड़कर मेरा सिर ज़ोर-ज़ोर से ज़मीन पर पटकने लगा। 'मैं बोतल नहीं दूंगी, कभी नहीं दूंगी।' और उसने मेरे से बोतल छीन लेनी चाही। और मैंने बोतल उलट दी। यानि शराब ज़मीन पर गिरा दी। शंकर ने मुझे ऐसा करते जब देखा तो अपने गुस्से पर काबू नहीं पा सका। उसने मेरे हाथ से एक ही झटके में बोतल छीन ली और ज़ोर से मेरे सिर में दे मारी।

सिर से लहू बहता मैंने अपनी आँखों से देखा। लहू की धारा सिर से बहकर मुँह तक आ गई। दरवाज़ा खटखटाया जा रहा था। शायद पिता जी थे। मैं उठी, दरवाज़े तक गई, दरवाज़ा खोला और गिर गई।

इसके बाद मेरे साथ क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं। हाँ, जब मुझे होश आया तो जाना मैं सिविल हस्पताल, जालन्धर में हूँ। पिता जी

और शंकर सामने बैठे रो रहे हैं।

शंकर रो रहा था। सचमुच रो रहा था। उसकी आंखों में आंसू थे। मैंने पहली बार शंकर को रोते देखा था।

थोड़ी देर बाद रानी आ गई और पिता जी और शंकर वहाँ से चले गये।

मुझे डॉक्टर ने बोलने को मना कर दिया था और रानी से भी कह दिया था कि वह मुझे न बुलाये या मैं रानी से बोलना भी चाहूँ तो भी रानी मुझे बोलने न दे।

मैं बोल नहीं सकती थी तो सोच तो सकती थी। हाँ, सोच तो सकती थी। कुछ भी सोच सकती थी। मैंने मन ही मन यह सोचना शुरू कर दिया—कि आज शंकर रो रहा था। हाँ शंकर रो रहा था। और यह रुदन बनावटी नहीं हो सकता। पत्नी हस्पताल में पड़ी हो, सिर पर पट्टियां बँधी हों और इस हालत तक पहुँचाने का सारा दोष उसी का हो और वह रोये न? आखिर शंकर के पास भी हृदय है। आदमी कितना ही कठोर क्यों न हो, ऐसी स्थिति में वह अपने आँसुओं को नहीं थाम सकता। और समझदार के लिए इतना ही काफी होता है।

आज वह रो रहा था और मेरा मन कह रहा था कि वह अपने किये पर प्रायश्चित्त भी कर रहा था। वह अब जीवन में कभी ऐसी भूल नहीं करेगा। यानि अब कभी शराब नहीं पियेगा और जब शराब नहीं पियेगा तो फिर किसी वेश्या को घर में नहीं लायेगा और जब वह ऐसा नहीं करेगा तो वह आदमी बन जायेगा और तब मैं संसार की सब स्त्रियों से ज़्यादा सुखी हो जाऊँगी। हाँ, मोहिनी से भी ज़्यादा सुखी हो जाऊँगी। आखिर किसी को सुधारना भी तो एक प्रकार का पुण्य ही है।

मैं उस हस्पताल में कोई बीस दिन रही। रानी मेरे पास रोज़ आती। वैसे शंकर ने भी कोई नागा नहीं डाला था। आता वह भी रोज़ था और रोज़ मेरे से कुछ बातें करता, प्रेम की बातें। और कहता— 'कला, तुमने मुझे माफ कर दिया है न ?'

शंकर के मुँह से ये शब्द सुन लेने के बाद मुझे लगा कि मैंने इस कुछ पा लिया है और अब और कुछ पाना शेष नहीं है।

'शंकर ने मुझसे कहा—'कला !'

'जी !'

'तुमने मुझे माफ कर दिया ?'

'आप कैसी बातें कर रहे हैं ?'

'तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम अब भी मेरे से नाराज़ हो। कला, तुम मुझे और शर्मिन्दा मत करो।'

'नहीं, स्वामी आपको मैं शर्मिन्दा नहीं कर रही हूँ। और फिर इसमें पूरा दोष आपका भी तो नहीं है, कुछ दोष शराब का भी तो है !'

'बस बस, कला, और कुछ मत कहो। शराब का नाम भी मेरे सामने मत लो।'

शंकर की यह बात सुनते ही लगा कि शंकर अब वह शंकर नहीं रहा। और भूल करके भूल स्वीकार कर लेना ही अपने में एक गुण है जो गुण आदमी को देवता बना देता है। शंकर देवता नहीं तो एक नेक आदमी तो बन ही जायेगा।

शंकर ने फिर कहा—'कला, मैं डरता हूँ।'

'किस लिए ?'

'इसलिए कला, कि यदि इन दिनों राजेश जालन्धर तुमसे मिलने

आ जाये तो···

'तो इसमें डरने की कौन-सी बात है ?'

'यही कि वह क्या सोचेगा ?'

'स्वामी, आप चिन्ता क्यों करते हैं ? राजेश आयेगा भी तो मैं उससे कह दूंगी।'

'क्या कहोगी ?'

'यही कि सीढ़ियों से पैर फिसल गया था, और सिर पर थोड़ी चोटी आ गई है। एक दो दिन में ठीक हो जाऊँगी। और फिर मेरा राजेश ऐसा नहीं है जो मेरी बात पर विश्वास न करे।'

और इतने में शंकर की आँखों से फिर दो बूंद आँसू गिर गये। और मुझे लगा कि मेरी धारणा की पुष्टि हो रही है। उसी धारणा की कि शंकर अब कभी शराब नहीं पियेगा।

सात

अस्पताल से छुट्टी पाकर मैं अपने घर आ गई। और जो मेरे साथ होता था, वही मेरे साथ होता रहा। यानि मुझे रोज़ मार पड़ती रही। शंकर रोज़ शराब पीकर घर आता रहा।

पिता जी का मुझसे कोई प्रेम न हो, ऐसी बात नहीं थी। शंकर के पिता जी मुझसे बहुत प्रेम करते थे। इतना प्रेम—जितना कि वह रानी से करते थे। मुझे कई बार कहते बेटी, तुम चाहो तो अपने घर दिल्ली चली जाओ, और तब तक वहीं रहो जब तक शंकर ठीक नहीं हो जाता। पर मैंने पिता जी की एक न सुनी।

शंकर को ठीक करने के मैंने कई उपाय किये, और हर बार असफल हो जाने पर निराश भी हुई। आखिर साधारण-सी नारी थी। कई बार मन में आया कि दिल्ली चली जाऊँ या फिर राजेश को लिख दूँ कि वह मुझे यहाँ से ले जाए। मैं यहाँ एक पल भी और नहीं रह सकती। बिल्कुल नहीं रह सकती। फिर मैं अपनी मोहिनी के पास जाकर पूछूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।

फिर मुझे लगा कि मोहिनी तो कहेगी ही—कचहरी के कटहरे में जाकर ऐसे पति को छोड़ दो। और फिर तुम ऐसे पति को छोड़ भी तो सकती हो, एक आवेदन-पत्र से छोड़ सकती हो, कानूनन छोड़ सकती हो।

पर फिर सोचा, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। और एक दिन

मैंने पिता जी से कहा—

'पिता जी, आप मेरे लिए एक काम कर सकते हैं ?'

'कहो बेटी !'

फिर मुझे संकोच आ गया।

पिता जी, ने बड़े अधिकारपूर्वक कहा—'कहो, बेटी, संकोच मत करो। जब मैं तुम्हें रानी जैसा ही समझता हूँ तो तुम मुझे अपने लाला जी जैसा क्यों नहीं समझती ?'

मैंने कहा—'पिता जी, क्षमा कीजिएगा। मैं जो आपसे कहने जा रही हूँ, वह एक अच्छी बहू को या कि अच्छी बेटी को नहीं कहना चाहिए। पर फिर भी कह रही हूँ। घर में और कोई पुरुष नहीं इसलिए आपसे ही कह देना ठीक समझती हूँ।'

'बेटी, कहो भी न !'

'पिता जी, आप मुझे बीस बोतल शराब ला दीजिए।'

'ठीक है बेटी।'

पिता जी ने इससे आगे कुछ नहीं पूछा। उन्होंने समझ लिया कि मैं जिस काम के लिए शराब की बीस बोतलें मँगा रही हूँ, वह काम बुरा नहीं है। या कि इससे तो अच्छा ही है कि जो शंकर आजकल करता है। शंकर बाज़ार से शराब पीता है, न जाने फिर कहाँ-कहाँ घूमता है। और बेहोश हो जाता है और ऐसे आदमियों के झगड़े भी तो बहुत होते हैं। कोई उसे कुछ पिला दे या कि कुछ ज़हरीली चीज़ खिला दे और···

पिता जी ने बीस बोतल शराब मुझे लाकर दे दी।

एक दिन सुबह जब शंकर मुझसे क्षमा माँग रहा था, और कह

रहा था—'मालूम नहीं, रात के आठ बजे मुझे क्या हो जाता है। मेरी बुद्धि खराब हो जाती है।' मैंने शंकर से कहा—'आप मेरी एक बात मानेंगे ?'

'हाँ, कला, कहो क्या चाहिए ?'

'जो चाहूँ आप देंगे ?'

'हाँ, कहो भी न ?'

'मैं चाहती हूँ, आज आप शाम के छः बजे मेरे पास आ जायें।'

'क्यों ?'

'वैसे ही। क्या इतना भी अधिकार नहीं है आप पर आपकी कला को कि एक दिन घर जल्दी आने के लिए प्रार्थना कर सके ?'

'कहो, क्या चाहती हो ?'

'आज आप छः बजे घर आ जायेंगे न !'

'हाँ, ज़रूर आ जाऊँगा।'

'मेरी कसम खाइये।'

'खा ली।'

'नहीं, मेरे सिर पर हाथ रखकर कहिए कि आप जल्दी आ जायेंगे।'

और शंकर ने मेरे सिर पर हाथ रखकर कह दिया—'मैं आज छः बजे घर पहुँच जाऊँगा।'

उस दिन शंकर छः बजे से कुछ पहले ही घर पहुँच गया। आते ही कहने लगा—'कहो कला, क्या बात है ! किस लिए बुलाया था ?'

'मैं आज रात वाला सिनेमा देखना चाहती हूँ।'

'तो फिर मुझे इतनी जल्दी क्यों बुला लिया ? मैं अभी थोड़ी देर में आ जाऊँगा।'

'नहीं, आप अभी यहीं रहिए।'

लगभग साढ़े सात बजे शंकर चुपचाप घर से बाहर निकज जाना चाहता था। मैंने कहा—'कहाँ जा रहे हैं ?'

'अभी आ रहा हूँ।'

'नहीं, आप आज कहीं नहीं जायेंगे।'

'क्यों ? सिनेमा रात का देखना चाहती हो, मुझे अभी से क्यों रोक रही हो ? मुझे जाने दो। मैं अभी टिकटें लेकर आता हूँ।'

मुझे लगा कि शंकर के मस्तिष्क में विकृति आ गई है और मेरे लाख मना करने पर भी वह नहीं रुकेगा। मैंने बड़े नम्र स्वर से कहा— 'आप कहाँ जाना चाहते हैं ?'

'जहाँ रोज़ जाता हूँ।'

'शराब पीने ?'

'हाँ।'

'तो यदि मैं आपको शराब यहीं पिला दूं तो ?'

'तुम मुझे शराब पिलाओगी ?'

'हाँ, इसमें बुरा ही क्या है ! क्या मैं आपको उस ढंग से शराब नहीं पिला सकती जिस ढंग से कोई दूसरा आपको पिलाता है ?'

'तुम्हारे पास शराब है ?'

'हाँ, है।'

'कहाँ है ?'

और मैंने आलमारी का दरवाज़ा खोल दिया।

बोतलें देखते ही शंकर की आँखें लाल हो गईं। 'अच्छा, ठीक है, मैं आज कहीं नहीं जाऊँगा। यहीं शराब पी लूंगा। तुम ज़रा पानी का

प्रबन्ध करो।'

उस रात मैंने शंकर को पिलाई। अपने हाथों से पिलाई। और शंकर शराब के नशे में कहता गया—'वाह भई, आज तो जितना सरूर आया है, ज़िन्दगी में कभी नहीं आया।'

और मैंने मन ही मन भगवान् से प्रार्थना की—'भगवान् ! तुमने आज तक मेरी नहीं सुनी। आज इतनी बात तो मान ही लो कि शंकर को इतनी सद्बुद्धि दे दो, केवल इतनी ही सद्बुद्धि कि वह शराब पीने घर से बाहर न जाया करे, यानि घर में ही शराब पीनी शुरू कर दे। और भगवान् ने मेरी प्रार्थना सुन ली। शंकर रोज़ घर में ही शराब पीने लगा। मेरे ही हाथों से पीने लगा। और पहले से कम पीने लगा। मेरे में एक प्रकार का सन्तोष आ गया कि शंकर मेरे से प्रेम तो करता है, बस मेरे लिए यही काफी है, और मुझे चाहिए ही क्या ? धीरे-धीरे इसकी यह आदत भी छुड़ा दूंगी।

ग्राठ

कुछ दिनों बाद डाकिये ने ग्रावाज़ लगाई—'कोई है?' कोई है?' रानी नीचे गई। इतने में डाकिया चिट्ठी फेंककर चला गया था। रानी ने वह चिट्ठी उठाई ग्रौर सीधी ऊपर ग्रा गई। कहने लगी—'भाभी, तुम्हारी चिट्ठी है। शायद राजेश भैया की है।' राजेश की चिट्ठी, मेरे भाई की। हाँ, उसी की है। मैंने लिफाफा फाड़ा ग्रौर जल्दी से पढ़ गई।

तो राजेश भैया की शादी है। एक महीना ही रह गया है। लिखा है—'माँ कहती है कि कला खुद ग्राकर ही सब कपड़ों ग्रौर गहनों का प्रबन्ध करेगी। शंकर भैया ग्रौर रानी को भी साथ लेती ग्राना।'

राजेश की चिट्ठी पढ़कर मैं सब कुछ भूल गई ग्रौर भाभी के बारे में सोचने लगी—तो हमारी भाभी ग्राने वाली है।

शाम जब शंकर घर पहुँचा तो मैंने उसे चिट्ठी दिखाई। शंकर ने बड़े उत्साह के साथ कहा—'कला, तुम्हें ज़रूर जाना चाहिए।'

'ग्राप भी चलिए न!'

'नहीं, मैं ग्रभी जाता ग्रच्छा नहीं लगता। इतने दिन वहाँ क्या करूँगा। शादी से एक-दो रोज़ पहले ग्रा जाऊँगा।'

'फिर मैं रानी को साथ ले जाऊँ?'

'नहीं नहीं, तुम तो जानती हो रानी के इम्तहान हैं, मैं रानी को ग्रपने साथ ही लेता ग्राऊँगा।'

हमें बातें करते-करते दस बज गये ग्रौर शंकर ने शराब नहीं माँगी

और न मुझे ही ध्यान रहा कि शंकर के शराब पीने का समय बीत चुका है।

मैंने पूछा—'आज आप शराब नही पीयेंगे ?'

'नहीं, आज रहने दो।'

बस शंकर का इतना कहना था कि मैं भागकर पिता जी के पास चली गई। मैं पिता जी से कहना चाहती थी—'आज शंकर ने शराब नहीं पी है।'

पिता जी बहुत खुश हुए। फिर मैंने उन्हें राजेश की चिट्ठी दिखाई और दिल्ली जाने की अनुमति माँगी। पिता जी ने मुझे पाँच सौ रुपये दिये और कहा—'बेटी, इन्हें रख लो—भाई की शादी पर काम आयेंगे। और फिर, तुम्हारे पास कुछ आभूषण भी तो नहीं हैं।'

दूसरे दिन शंकर मुझे दोपहर की गाड़ी में चढ़ाने के लिए स्टेशन पर पहुँचा। गाड़ी पर बिठा देने के बाद उसने चमड़े का एक बैग मुझे दिया और कहने लगा—'इसे रख लो।'

'क्यों ?'

'बस, रख लो।'

'इसमें क्या है ?'

फिर शंकर ने इधर-उधर देखा कि कोई सुन तो नहीं रहा। फिर धीरे से मेरे कान के पास आकर कहने लगा—

'कला, इसे गाड़ी में मत खोलना।'

'क्यों ?'

'इसमें हीरे का एक सैट है।'

'यह क्या ?'

'तुम्हारे पास भाई की शादी पर पहनने के लिए कुछ भी तो नहीं है।'

इतने में इंजन ने सीटी बजाई। वही सीटी, जिसमें यह संकेत होता है कि गाड़ी चलने वाली है। शंकर उसी समय गाड़ी से नीचे उतर गया।

मैं ज़नाने डिब्बे के सेकेण्ड क्लास में बैठी थी। एक स्त्री उस डिब्बे में और थी।

शंकर के चले जाने के बाद मेरे मन में कई विचार आते और कई जाते।

शंकर मेरा इतना ध्यान रखता है। अब शंकर अच्छा आदमी बन गया है। मैं चाहती थी कि मैं देखूँ कि इस चमड़े के बैग में क्या है और अब मैं और प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी। पर मेरे गाड़ी के डिब्बे में एक स्त्री और भी तो है। खोलूँ कि नहीं? नहीं, अभी नहीं।

फिर मैंने उस स्त्री से पूछा—'आप कहाँ जा रही हैं?'

'दिल्ली। मुझे दिल्ली जाना है, और आप?'

'मैं भी दिल्ली ही जा रही हूँ।'

'तब तो हम दोनों का अच्छा साथ रहेगा।' वह स्त्री मेरे से कुछ और भी बात करना चाहती थी। पर मैं चाहती थी किसी तरह उस बैग को खोलकर देखूँ कि उसमें क्या है। सैट है भी कि नहीं। कहीं शंकर मुझे बहका तो नहीं गया। नहीं नहीं, शंकर ऐसा नहीं कर सकता। फिर दिमाग में एकाएक एक उपाय सूझा। मैं बैग लेकर पेशाब-घर में घुस गई और अन्दर से चिटकनी लगा ली। एक नहीं, दोनों चिटकनियाँ लगा लीं। और बड़ी जल्दी से वह बैग खोला। फिर उसमें से सैट निकाला। 'वाह! यह तो हीरों का सैट है।' मैं शीशे के सामने खड़ी

थी। मैंने वह हार गले में डाला। फिर शीशे में देखा कि कैसी लग रही हूँ—बहुत सुन्दर लग रही हूँ। और जल्दी से वह हीरे का हार उतार-कर मैंने बक्से में रख दिया और बाहर चली आई।

तो शंकर इतना समझदार हो गया है। अनुभव करता है कि मेरे पास कुछ नहीं है और राजेश की शादी पर मेरा ऐसा जाना ठीक नहीं है। तो अब शंकर अच्छा आदमी हो गया है। चलो, शंकर भला बन जाये। मैं सब कुछ भूल जाऊँगी। भूल जाऊँगी कि उसने कभी मुझे मारा था या कि सिर पर शराब की बोतल मारी थी और मैं अस्पताल रही थी। मैंने अपने सिर पर हाथ रखा। और मेरा हाथ ठीक वहीं जा लगा, जहाँ अभी निशान था। बहुत गहरा न सही, इतना तो पता लग जाता था कि इस जगह कभी कोई चोट आई थी।

मैं गाड़ी में बैठी बाहर वृक्षों को घूमता देखती रही। आँखें तो वृक्षों को देख रही थीं पर सोच कुछ और ही रही थी। सोच रही थी कि राजेश से कह दूँ कि शंकर मुझे मारता है, रोज मारता है। और एक दिन हस्पताल भी भेज दिया था। पर नहीं, इससे क्या होगा। राजेश परेशान होगा। बेचारा न मालूम गुस्से में आकर क्या कुछ कर बैठे।

फिर मैंने निश्चय किया, नहीं, राजेश से कुछ नहीं कहना। मोहिनी से भी कुछ नहीं कहना है, और मैंने किसी से कुछ नहीं कहा।

भाई की शादी की खुशी में बहिन अपने कितने व्यक्तिगत ग़म भुला सकती है, यह मुझे राजेश की शादी वाले दिन पता लगा। बारात जाएगी, मैं भी जाऊँगी, भाभी आयेगी। बस इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं सोचती थी।

उन दिनों मोहिनी वहाँ नहीं थी। मैं मोहिनी के पिता से पूछकर मोहिनी के घर पहुंच गई। मोहिनी को मिली। भूषण को देखा। और एकदम मैं सोचने लगी कि भूषण और शंकर में कौन अच्छा है। और मैंने मन ही मन निर्णय किया कि शंकर अच्छा है, जो अब घर में ही शराब पीता है, बाहर नहीं जाता।

मोहिनी अब कुछ बदल गई थी। यह भी कहा जा सकता है कि मोहिनी गम्भीर हो गई थी और उसमें वह पहले वाली चंचलता नहीं रही थी। अब वह समझदार हो गई थी। काफी समझदार और मानने लग गई थी कि विवाह के पश्चात् नारी को एक ही से प्रेम करना चाहिए। केवल एक ही से, अपने पति से।

और मैंने अनुमान लगाया कि मोहिनी के यहाँ कुछ होने वाला है। हाँ, इस परिवार में कुछ वृद्धि होने वाली है और भगवान् इसे खेलने के लिए खिलौना देने वाला है। मोहिनी माँ बनने वाली है। मैं मोहिनी को निमन्त्रण-पत्र दे आई और माँ बनने की अग्रिम बधाई भी।

शंकर शादी वाले दिन ही दिल्ली पहुँचा। राजेश और माँ ने शंकर से बहुत कहा—'यह आपने अच्छा नहीं किया।' पर शंकर ने कहा कि वह किसी ज़रूरी काम में फँस गया था।

हमारा मकान काफी बड़ा था। इसलिए शंकर के लिए ऊपर एक कमरा खाली करवा दिया। यह कमरा मोहिनी के कमरे के बिलकुल साथ था।

मेरे भाई की शादी का दिन और मेरे अपने पति से अलग होने का दिन! कितनी विचित्र बात है! दुनियाभर के ग़मों को भुलाकर मैं जितनी खुश हो सकती थी, मैं उस दिन उससे भी ज़्यादा खुश थी। और

भगवान् को मेरी वह खुशी अच्छी नहीं लगी।

बारात चढ़ने वाली थी और लोग सज-धज कर राजेश की बारात पर जाने के लिए तैयार थे। और मैं देखना चाहती थी अपने शंकर को—कि वह आज कितना सुन्दर लगता है और कितना सुन्दर लगेगा जब वह राजेश की घोड़ी की लगाम पकड़ेगा !

हमारे यहाँ एक रीति होती है, कुछ लोग उसे रूढ़ी या परम्परा भी कहते हैं। कुछ इस रीति को पसन्द करते हैं, कुछ नहीं करते, और वह रीति होती है कि घोड़ी की लगाम घोड़ी पर बैठे हुए लड़के का बहनोई पकड़ता है। या कि राजेश की घोड़ी की लगाम शंकर को पकड़नी होगी।

कितनी अच्छी रीति है, जिसे लोग रूढ़ी या परम्परा कह देते हैं। और कितना अच्छा और स्पष्ट है इस रीति का अर्थ !

"ऐ घोड़ी पर बैठे हुए युवक ! यह ठीक है कि तू आज किसी की लड़की को लेने जा रहा है। किसी बाप की पली-पलाई लड़की लेने जा रहा है, किसी भाई की बहिन को छीनने जा रहा है, पर इस पर अभिमानी मत बन। क्या हुआ, तुमने भी तो अपनी बहिन किसी को दी है, और जिसको दी है वही तुम्हारी घोड़ी की लगाम पकड़े हुए है।"

यही वह रीति है जो हमारे लोगों में प्रचलित थी और काफी प्रचलित है और यह एक अच्छी रीति है, उन लोगों के लिए, जो इसका अर्थ समझते हैं।

बहिन ऐसे समय में घोड़ी को दाल खिलाती है, भाई को आशीर्वाद देती है, प्यार करती है। और जिनकी बहिनें नहीं होतीं, उन्हें उस दिन रोना पड़ता है, घोड़ी पर बैठे हुए भी रोना पड़ता है, और घोड़ी को दाल

खिलाने की रीति किसी को बहिन बनाकर पूरी करवानी होती है। हाँ, किसी को बहिन बनाकर, और ऐसी बहिन बनाकर आदमी को ऊपरी सन्तोष भले मिलता हो, भीतरी सन्तोष कभी नहीं मिलता। जिनकी बहिन नहीं होती, वे बार-बार रोते हैं। घोड़ी पर चढ़ते, दूज का त्योहार आते, राखी का त्योहार आते वे रोते हैं। घोड़ी पर चढ़ने की शुभ घड़ी तो जीवन में एक बार आती है, पर आदमी उस दिन भी इतना रो लेता है कि घोड़ी पर चढ़ने का आनन्द जाता रहता है। राखी वाले दिन, जो हर वर्ष आता है, जब कोई अपने सूने हाथों को लिए बाज़ार में घूमता है और लोगों को कहकर नहीं केवल अपने सूने हाथ दिखाकर अनजाने में कह देता है—मेरी बहिन नहीं, इसलिए रक्षा का बन्धन नहीं है और इसी लिए रो रहा है, और आँसू बाहर नहीं, भीतर गिरा रहा हूँ कि कहीं लोग यह न कहें कि इतना बड़ा होकर भी रोता है।

कैसे कटता होगा उन लोगों का जीवन जिनकी बहिनें नहीं होतीं!

उस समय राजेश भी रो रहा था। मैं घोड़ी को दाल खिला रही थी। राजेश की सगी बहिन घोड़ी को दाल खिला रही हो और उसका भाई रोये! पहले तो मुझे कुछ समझ में नहीं आया। फिर देखा, माँ भी रो रही है। माँ को रोते देखा, फिर राजेश को, और समझ में आया, हाँ ऐसे समय में जब घर का कोई बड़ा आदमी भी नहीं होता तो आँसू निकल आते हैं।

हमारे पिता जी नहीं हैं। राजेश घोड़ी चढ़ा है और आशीर्वाद देने के लिए पिता जी नहीं हैं।

मैं भी रो पड़ी। दाल घोड़ी को खिला दी। घोड़ी का समय हो गया। पर घोड़ी कैसे चल सकती है! शंकर के बिना कैसे चल सकती है! नहीं चल सकती, तो फिर शंकर कहाँ है? कहाँ हो सकता है!

सभी कह रहे थे। शंकर को बुलाओ। देर हो रही है।

और फिर मुझे ध्यान आया कि शंकर अपने कमरे में होगा। आठ बजे हैं। और वह कहीं नहीं हो सकता। मैं भागकर शंकर के कमरे में गई और देखा शंकर वहीं है। बोतल खोलकर बैठा है। मैंने जल्दी से शंकर के पाँव को पकड़ते हुए कहा—'स्वामी, यह आप क्या कर रहे हैं?'

'मैं शराब पी रहा हूँ।'

'आज मत पीजिए।'

'क्यों न पीऊँ?'

'भगवान् के वास्ते मत पीजिए। मैं आपके पाँव पड़ती हूँ।'

'मेरे साले की शादी हो और मैं शराब न पीऊँ? कैसे हो सकता है! पीछे हट जाओ।' और शंकर ने मुझे अपने पैरों से परे कर दिया।

मुझे गुस्सा आ गया। हालाँकि गुस्सा नहीं आना चाहिए था। मैंने शंकर से बोतल छीन लेनी चाही और उसमें सफल भी हो गई पर इतने में शंकर ने शराब का वह गिलास, जो उसके हाथ में था, शीशे का गिलास, मेरे मुँह पर दे मारा।

मोहिनी ने यह सब देख लिया था। मेरे मुँह से खून बह निकला। माँ, केवल और राजेश सामने खड़े थे। राजेश, जिसके सिर पर सेहरा बँधा था, चुपचाप अपनी बहिन के मुँह से रक्त बहता देख रहा था।

मुझे लगा कि राजेश अभी अपने सेहरे को उतारकर शंकर के साथ दो-दो हाथ करेगा और उसे तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक उसका

भी उतना ही रक्त नहीं निकाल लेगा जितना उसने उसकी बहिन का, नहीं नहीं, वह कला का नहीं, राजेश का भी तो बहा है ।

और ऐसी स्थिति में कौन आदमी धैर्य नहीं खो देता ! केवल देवता ही नहीं खोते, और मेरा राजेश किसी देवता से कम नहीं निकला ।

शंकर को अपने किये पर कोई प्रायश्चित न हुआ हो यह तो नहीं कहा जा सकता । पर राजेश ने शंकर से कुछ नहीं कहा । केवल इतना ही कहा—'आप इसी समय इस घर से निकल जाइये ।'

और शंकर वहाँ से चला गया ।

शंकर के चले जाने के पश्चात् राजेश खूब रोने लगा । ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा । वह रो रहा था अपनी किस्मत पर, अपनी बहिन की किस्मत पर ।

और हमारे सम्बन्धियों ने—जो तमाशा देखने वाले होते हैं, जिनमें सहानुभूति नहीं होती, अगर होती भी है तो बनावटी, और ऊपरी सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'राजेश, साढ़े आठ बज गये हैं, चलो जल्दी चलो, मुहूर्त का समय निकला जा रहा है ।'

कुछ कहने लगे—'बहिन घर में घायल पड़ी हो और भाई शादी रचाने चला जाये ?'

और कुछ बोले—'जो हो गया सो हो गया, अब इस बात को यहीं खत्म कीजिए ।'

इतने में डॉक्टर ने मेरी पट्टी कर दी थी ।

मेरी एक आँख पर पट्टी बँधी थी और एक आँख खुली थी । मैंने उसी आंख से देखा कि राजेश के आँसू थमने का नाम नहीं लेते । केवल भी रो रहा है । मोहिनी भी रो रही है । अब क्या होगा ?

मैंने राजेश को अपने पास बुलाया। राजेश ने मेरा सिर अपनी टाँगों पर रख लिया।

मैंने राजेश से कहा—'भैया, तुम घोड़ी लेकर जाओ। वहाँ सब लोग प्रतीक्षा कर रहे होंगे। और भाभी को जल्दी लाओ। अब मेरा तुम लोगों के सिवा कौन है ? जाओ भी, देर मत करो।'

राजेश रोता ही गया। वह कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं सकता था, पर जो राजेश कहना चाहता था वह मैं समझती जा रही थी। वह कहना चाहता था—'कला, यह कैसी शादी जिसमें भाई की इकलौती बहिन न हो।'

मैंने राजेश से कहा—'भैया, तुम जाओ। केवल को ले जाओ। मेरे पास माँ रहेगी। और हाँ, अगर वहाँ भाभी या कोई और तुमसे मेरे बारे में पूछें भी तो कह देना कि शादी की खुशी में सीढ़ियों से गिर गई है, ठीक हो जाने पर आपके पास आयेगी। ज़रूर आयेगी। अपना हिस्सा लेने तो आप खुद आयेगी।'

मैंने बड़े आग्रहपूर्वक राजेश को घोड़ी पर चढ़ जाने को कहा। बारातियों में वह उत्साह नहीं था। बाजों में वह गूँज नहीं और गैसों में उतना प्रकाश नहीं था। पर इससे क्या ! जो होना था वह हो गया।

मोहिनी भी उस दिन बारात पर नहीं गई। मोहिनी और माँ मेरे पास बैठे रहे। मोहिनी रोती ही जा रही थी और साथ कहती जा रही थी—'कला, तुम साधारण स्त्री नहीं हो। तुम देवी हो, ऐसी देवी जिसकी पूजा होनी चाहिए।'

सुबह राजेश भाभी लेकर घर आ गया। मैं सीधी भाभी के पास चली गई। दहेज मैंने नहीं देखा, न देखना ही चाहती थी।

नौ

मेरे ठीक हो जाने पर राजेश ने मुझे बी० ए० की परीक्षा देने को कहा।

राजेश का मुझे बी० ए० पास कराने के पीछे क्या अर्थ है, इसका मैंने अनुमान लगा लिया था कि वह चाहता है कि कला बी० ए० कर जाये, फिर बी० टी० कर जाये और फिर कहीं पढ़ाने लग जाये, और अपने पैरों पर खड़ी हो जाये। शंकर के पास तो राजेश मुझे कभी नहीं भेजेगा। इस जीवन में तो नहीं भेजेगा, मरते दम तक नहीं भेजेगा।

तबसे मैं राजेश के पास ही रहने लग गई। कुछ समय पढ़ने में लगा लेती तो कुछ भाभी के साथ बातें करने में। और जब मोहिनी इधर आती तो कुछ समय मोहिनी के साथ बिता लेती।

पर मैं क्या चाहती हूँ यह मुझसे किसी ने आज तक नहीं पूछा। राजेश ने भी नहीं। माँ ने भी नहीं। मैं चाहती कि शंकर यहाँ आये और फिर क्षमा माँगे। मेरे से नहीं, राजेश और माँ से, और फिर राजेश को इस बात का आश्वासन दिलाकर कि वह मुझे कभी नहीं मारेगा, या कि शराब भी कभी नहीं पीयेगा, वह मुझे ले जाये। मैं शंकर के पास जाना चाहती हूँ। पर मुझे कोई भेजने को तैयार नहीं है।

इस तरह दो वर्ष बीत गये और मैंने इसी बीच बी० टी० कर ली।

कुछ दिनों बाद एक डाकिया आया और चिट्ठी फेंकते हुए कह गया—'कला की चिट्ठी है।'

चिट्ठी और मेरी ? कहाँ से आ सकती है ? क्या बी० टी० सर्टिफिकेट आया है ? नहीं, वह तो शंकर की चिट्ठी थी।

जालन्धर,

८-२-१९५३

कला,

मैंने जानबूझ कर 'कला' लिखा है, हालाँकि मुझे 'प्रिय कला' लिखना चाहिए था। पर मैं मानता हूँ कि मैं तुम्हें प्रिय लिखने के अधिकार से वंचित हूँ। मैं अच्छा आदमी नहीं हूँ—यह तो तुम जानती हो। तो क्या माँ-बाप अपने बुरे लड़के को घर से निकाल देते हैं ? घर से नहीं निकालते बल्कि उसे सुधारने की कोशिश करते हैं। और मुझे सुधारने की कोशिश तुमने की और बीच में ही मुझे छोड़ गई।

खैर, मैं जैसा था, वैसा ही अब हूँ। इस बीच में काफी सुधर गया हूँ यह नहीं कह सकता। हाँ, मैं ठीक वैसा ही हूँ जैसा तुमने मुझे छोड़ा था और अब बिगड़ने की सम्भावना ज़्यादा है, ठीक होने की कम। और फिर जब डॉक्टर ही मुँह मोड़ ले तो कोई ठीक कैसे हो सकता है ! भगवान् का सहारा तो एक ढोंग होता है।

हाँ, तो रानी की शादी है। आज से ठीक दस दिन बाद। १८ फरवरी को। रानी तुमसे बहुत प्रेम करती है या कि आजकल वह तुम्हारे बिना बहुत रोती है, यह सब मैं नहीं कहूँगा। क्योंकि कौन किससे कितना प्रेम करता है, यह सब कहा नहीं जाता और न ही चिट्ठी में लिखा ही जाता है और इतना तो मुझे विश्वास है कि जिसको चिट्ठी लिखी जा

रही है वह इतना तो जानता ही होगा कि कौन उससे प्यार करता है और कितना करता है। और कौन विल्कुल नहीं करता। और जो बिलकुल नहीं करता वह अगर लिखे भी कि वह प्यार करने लग गया है तो यह एक प्रकार का बहाना ही होगा, तुम्हें बुलाने का बहाना और बहाना बनाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

पिता जी की इच्छा है कि रानी की शादी पर ज़रूर आओ और उन्होंने यह भी कहा है कि एक पिता अपनी बेटी को जिस अधिकार से बुलाता है, मैं उसी से तुम्हें बुला रहा हूँ।

रानी की शादी पर तुम्हारा होना कितना ज़रूरी है यह तो तुम अच्छी तरह जानती हो और तुम्हारे न आने से लोग क्या-क्या कहेंगे या कि क्या-क्या सोचेंगे यह भी तुम जानती हो। और इतना जानती हुई भी तुम शादी पर न आओ यह मैं सोच नहीं सकता और मेरा विश्वास है कि तुम आओगी और ज़रूर आओगी।

यह चिट्ठी इतनी व्यक्तिगत नहीं है इसलिए तुम यह चिट्ठी राजेश को भी दिखा सकती हो और राजेश से कह भी सकती हो कि शंकर बहुत शर्मिन्दा है। अपने किये पर बहुत शर्मिन्दा है और उसी शर्म के मारे अब वह तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख रहा है।

शंकर राजेश को चिट्ठी लिखते या राजेश के सामने आते उतना ही डरता है जितना एक अपराधी पुलिस इंस्पेक्टर या किसी बड़े महात्मा की आँखों में आँखें डालते डरता है।

राजेश को देवता या महात्मा कहना ही ठीक होगा। मेरे लिए तो वह देवता है। किसी साधारण आदमी के लिए वह भले ही देवता न हो। पर मैं तो आदमी ही नहीं हूँ, जानवर हूँ, यह भी कैसे कह सकता

हूँ। जानवर को भी इतना तो ज्ञान होता ही है कि यह मेरा मालिक है और मुझे इसे काटना नहीं है, बल्कि भौंकना भी नहीं है। और मेरे में तो इतना भी ज्ञान नहीं है।

मैं तुम्हें बुला रहा हूँ यह ठीक है, पर अपने लिए नहीं बुला रहा हूँ। तुम मेरे से नाराज़ हो, और मेरे जैसे आदमी से तुम्हें नाराज़ होना भी चाहिए। पर तुम चाहो तो अपनी नाराजगी बनाए भी रख सकती हो, यानि तुम रानी की शादी पर आकर भी मुझसे न बोलना। मैं सामने आऊँ तो मुँह मोड़ लेना या अपनी आँखों पर अपने हाथ रख लेना। और मुझे तुम्हारे द्वारा ऐसा किया जाना बिल्कुल बुरा नहीं लगेगा।

पर तुम रानी की शादी पर ज़रूर आओ। यही मेरा निवेदन है। सामने नहीं हो, नहीं तो तुम्हारे पैर पकड़कर तुमसे कहता—मेरे जैसे आदमी को तुम्हारे जैसी देवी के पैर ही पकड़ने चाहिएँ। तुम्हारा हाथ पकड़ना भी एक प्रकार की अनाधिकार चेष्टा ही होगी।

और अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

तुम्हारा,

शंकर

मैं चिट्ठी पढ़कर फूली नहीं समाई। मैंने वह चिट्ठी राजेश को पढ़ाई, भाभी को और माँ को भी पढ़ाई। पर किसी के चेहरे के भाव से मुझे ऐसा नहीं लगा कि वे मुझे रानी की शादी पर जाने की अनुमति देंगे।

मैंने मोहिनी को भी चिट्ठी दिखाई तो मोहिनी बोली—'यही तो आदमी की चालाकी है कला! अब तुम्हें ऐसे आदमी के पास बिल्कुल नहीं जाना चाहिए, बल्कि तुम्हें ऐसे आदमी को छोड़ देना चाहिए और

अपनी नई शादी करवा लेनी चाहिए।'

मुझे रानी की शादी पर किसी ने नहीं जाने दिया। बल्कि राजेश की ओर से यह आदेश भी मिल गया कि मैं शंकर को इस चिट्ठी का जवाब भी नहीं लिख सकती और यदि लिखूंगी भी तो राजेश समझेगा कि बहिन भाई से अलग होना चाहती है और भाइयों को अप्रत्यक्ष रूप से कहना चाहती है कि भाई अपनी बहिन को रोटी नहीं खिला सकते। और इस पर भी यदि कला शंकर से कोई पत्र-व्यवहार करेगी तो यह एक प्रकार का अपमान होगा। भाइयों का अपमान होगा। भाइयों के मुँह पर एक तमाचा होगा जो कला जैसी बहिन को शोभा नहीं देता।

इस तरह धीरे-धीरे समय वीतता गया। मुझे राजेश ने गाँधी विद्यालय में अध्यापिका की जगह दिलवा दी और मैं रोज़ उस विद्यालय में जाने लग गई। मुझे वहाँ से १५० रु० मासिक मिलने लगा।

मैं अध्यापिका हो गई हूँ, इसकी खबर शंकर को कैसे पता चल गई! एक चिट्ठी शंकर ने मुझे और लिखी। शंकर ने मुझे केवल दो ही पत्र लिखे थे। एक रानी के विवाह पर बुलाने के लिए और दूसरा मेरा जालन्धर न जाने की प्रतिक्रिया के रूप में।

पुरुष में कितना पुरुषत्व होता है यह मुझे शंकर की दूसरी चिट्ठी पढ़कर पता लगा। क्या हर आदमी में यह पुरुषत्व होता है, या कि हर आदमी को अपने पुरुष होने पर अभिमान होता है, या कि केवल शंकर में ही है?

जालन्धर,

२८-४-१९५३

कला,

तुम रानी की शादी पर नहीं आई। चलो ठीक ही हुआ। रानी की शादी हो गई है। बड़ी धूम-धाम से हो गई है, और अब वह बहुत खुश है।

खुश तो तुम भी वहाँ बहुत होगी। लगता है तुम्हें भी अब किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है। अच्छा खाती हो, अच्छा पीती हो। सारा दिन बाहर रहती हो। जहाँ चाहो जा सकती हो, जब चाहो जा सकती हो। तुम्हारे जैसी स्त्री को कोई भी आदमी अपने घर रख सकता है। इसलिए राजेश और तुम्हारी माँ को तुम्हें अपने पास रखने में कोई आपत्ति नहीं है।

तुम उन्हें पैसा कमाकर देती हो, उचित तरीके से या अनुचित तरीक से। जवान हो, खूबसूरत भी हो, और अच्छे पैसे कमा लेती हो। एक मकान है ही, दो-चार और बन जायेंगे और फिर तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत क्यों होगी ?

यह मेरी अन्तिम चिट्ठी है। इसके बाद मैं तुम्हें पूरे जीवन में कभी चिट्ठी नहीं लिखूंगा। और न ही तुमसे इसका उत्तर ही चाहूँगा। तुम खुश रहो। एक बात मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि मैं तुम्हें अपने घर में रखने को तैयार नहीं हूँ। यानि कि तुम्हें अब इस घर में आने की कोई ज़रूरत नहीं है।

इसका कहीं तुम यह अर्थ न निकाल लो कि मैं नई शादी करना चाहता हूँ। मैं स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैं पूरे जीवन विवाह नहीं करूँगा। मेरा विवाह कला के साथ हुआ था जो अब मर गई और दूसरे विवाह के मैं पक्ष में नहीं हूँ। तुम खुश रहो, यही भगवान् से प्रार्थना है।

—शंकर

शंकर की पहली चिट्ठी और दूसरी चिट्ठी में कितना अन्तर है। पहली चिट्ठी में कितना नम्र है और दूसरी में वह कितना कठोर हो गया है। कभी सोचती हूं कि दूसरी चिट्ठी उसने ज़रूर शराब पीकर लिखी होगी। पर फिर सोचती हूँ अगर वह शराव पीकर लिखी गई तो उसमें शब्दों का संयोजन क्यों अच्छा है। अगर वह शराब पीकर नहीं लिखी गई तो क्या वह सारे जीवन के लिए मेरे से सम्बन्ध तोड़ देना चाहता है।

हाँ, वह मेरे से सम्बन्ध तोड़ देना चाहता है। मुझे अपना पूरा जीवन अपने भाई राजेश के यहाँ रहकर गुज़ारना पड़ेगा। चिट्ठी में तो यही लिखा है। चिट्ठी पढ़ने के बाद मेरे मुंह से अचानक एक चीख निकल गई। मैं नहीं चाहती थी कि इस चिट्ठी को कोई पढ़े। पर जैसा मैं चाहती थी वैसा नहीं हुआ। भाभी ने आकर मुझसे चिट्ठी छीन ली। और वही चिट्ठी राजेश भैया के पास पहुँच गई।

ऐसी चिट्ठी पढ़कर कौन भाई अपनी बहिन को भेजना चाहेगा। और राजेश ने भी माँ से कह दिया—'माँ, कला अब कभी जालन्धर नहीं जायेगी। शंकर के पास मैं इसे कभी नहीं भेजूंगा। अपने जीते जी नहीं भेजूंगा। और अगर माँ, कला शंकर के पास गई, मेरी इच्छा का विरोध करके शंकर के पास गई, या फिर इसने शंकर के पास जाने की इच्छा भी प्रकट की, तो मैं ज़हर खा लूंगा माँ, या कोई ऐसा काम कर लूंगा जिससे मेरे अशान्त मन को शान्ति मिल जाय, सदा के लिए शान्ति मिल जाय।'

और माँ रो पड़ी।

दस

शंकर से अलग हुए आज मुझे दस वर्ष हो गए हैं। मैं अपने भाई राजेश के पास रहती हूँ। स्कूल की नौकरी करती हूँ और बस...... और इससे ज़्यादा मेरे जैसी स्त्री कर ही क्या सकती है।

शंकर को मैं अपना पति मानती हूँ। मन ही मन उसे पति मानती हूँ। राजेश के सामने जाकर मन की बात मुँह पर नहीं लाती, क्योंकि मुझे ध्यान आ जाता है कि कहीं राजेश अपनी 'कथनी' को 'करनी' में न बदल दे, यानि सचमुच कुछ खा न ले।

मोहिनी का एक लड़का है, अब तो वह भी काफी बड़ा हो गया है। और फिर मुझे ध्यान आता है कि जिनकी सन्तान होती है उनके साथ ऐसा नहीं होता जो मेरे साथ हो रहा है। सन्तान—लड़का या लड़की—दो अलग-अलग विचारधारा के प्राणियों को भी एक कर देती है।

पिता कहता है लड़का मैं रखूंगा और माँ कहती है नहीं लड़का मैं रखूंगी और इसी झगड़े में माँ-बाप एक हो जाते हैं। न इच्छा होते हुए भी एक हो जाते हैं। पर भगवान् ने तो मुझे उस सम्पत्ति से भी वंचित रखा है।

मैं आज ३५ वर्ष की एक स्त्री हूँ। दूसरा विवाह तो क्या होगा ! पर शंकर ने भी दूसरा विवाह नहीं करवाया है। मैं शंकर से एक बार मिलना चाहती हूँ, देखना चाहती हूँ कि इन दस वर्षों में मेरा शंकर कैसा हो गया है। अब तो काफी बड़ा हो गया होगा। आदतें भी काफी सुधर

गई होंगी। समय सब सिखा देता है।

यह मेरी एक इच्छा है, अन्तिम इच्छा, शंकर से मिलने की इच्छा। मैं तो केवल शंकर को देखना चाहती हूँ, बोलने की अनुमति नहीं माँगती।

मैं आज भी शंकर से प्रेम करती हूँ। मन ही मन उसे याद करती हूँ और एकान्त में बैठकर रो लेती हूँ। मैं रोती हूँ, पर आँसू नहीं गिरता। क्योंकि जितने आँसू भगवान् किसी पुरुष या नारी को देता है, उसकी किस्मत लिखते समय या भाग्य-रेखा बनाते समय...भगवान् ने वे आँसू मुझे भी दिये। पर मैं उन आँसुओं को समय से पहले ही समाप्त कर चुकी हूँ। और अब कोई आँसू बहाने को नहीं बचा, मेरे पास आज खर्च करने को कोई आँसू नहीं है और फिर आँसू कोई उधार भी तो नहीं देता।

मैं एक ऐसी स्त्री हूँ, जिसका पति है, पति नहीं भी है। पति ज़िन्दा है, मैं ज़िन्दा हूँ और कोई ज़िन्दा नहीं है।

मैं सधवा हूँ, और सधवा नहीं भी हूँ, पर मैं विधवा तो बिल्कुल नहीं हूँ और न ही ये शब्द किसी से सुनने को तैयार हूँ।

तैयार तो इस पर भी नहीं हूँ कि कोई आकर मेरे सामने मेरे पति की, मेरे शंकर की बुराई कर जाये।

